ओ३म्

अथर्ववेदीय-पञ्चपटलिका

PANCHA-PATALIKA.

अर्थात्

अथर्ववेद का तृतीय लक्षण ग्रन्थ ।

भाषानुवाद-सहित ।

सम्पादक

भगवद्दत्त बी० ए०

अध्यापक दयानन्द कालेज, लाहौर ।

ओ३म् संवत् १९६०८५३०२०

विक्रम सं० १९७७ सन् १९२० ई०

दयानन्दाब्द ३६

[illegible] [मूल्य [illegible]

OM

THE ATHARVAVEDIYA PANCHA-PATALIKA.

THROWING LIGHT

ON THE

Arrangement, division and text of the Atharva Veda Samhita

WITH

A translation and an index of the pratikas.

EDITED BY

BHAGWADDATTA, B.A.,
PROFESSOR OF VEDIC THEOLOGY AND SANSKRIT AND
SUPERINTENDENT OF THE RESEARCH DEPARTMENT
D.A.V. COLLEGE LAHORE,

MAY 1920.

First Edition
600 Copies.

Price 2 Shillings,
6 Pence.

ओ३म्

दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत-ग्रन्थमाला ।

अनेक विद्वानों की सहायता से

भगवद्दत्त
संस्कृताध्यापक वा अध्यक्ष रीसर्च-विभाग
दयानन्द महाविद्यालय, लाहौर द्वारा
सम्पादित ।

ग्रन्थाङ्क १ ।

ओ३म्

अथर्ववेदीय-पञ्चपटलिका

अर्थात्

अथर्ववेद का तृतीय लक्षण ग्रन्थ।

भावानुवाद-सहित।

सम्पादक

भगवद्दत्त बी० ए०

संस्कृताध्यापक दयानन्द कालेज, लाहोर।

आर्य सम्वत १९६०८५३०२०

विक्रम सं० १९७७ सन् १९२० ई०

दयानन्दाब्द ३७

प्रथमवार ५०० प्रति। [मूल्य १) रु०

Printed by Bhairo Prasada,
MANAGER VIDYA PRAKASHA PRESS LAHORE,
and Published by
THE RESEARCH DEPARTMENT D.A.V. COLLEGE, LAHORE



ओ३म्

वेददात्रे परमगुरवे नमोनमः ।

अथर्ववेदीय पञ्चपटलिका ।

भूमिका ।

आर्य्यावर्त्तीय इतिहास का मध्यम-काल पौराणिक याज्ञिक काल कहा जा सकता है। पौराणिक इस लिये कि उस समय यज्ञों का वास्तविक अर्थ जो वैदिक काल में प्रचलित था, भूल चुका था या भुलाया जा रहा था। उस काल में याज्ञिक सम्प्रदाय के प्रभाव से यजुर्वेद और उसी की शाखाओं का अधिक अध्ययनाध्यापन होता था। अन्य वेद बहुत पीछे पड़ गये थे, और उन में से भी अथर्ववेद का पठन पाठन अत्यल्प रह गया था। फलतः अथर्ववेद सम्बन्धी वाङ्मय भी पीछे पड़ गया। अथर्ववेद सम्बन्धी उन्हीं भूले हुए ग्रन्थों में से यह पञ्चपटलिका भी एक है। आधुनिक काल में इस के विषय आदिकों का सब से प्रथम सुविस्तृतोल्लेख पण्डित शङ्करपाण्डुरङ्ग का है। उन्होंने सायणभाष्य-सहित अथर्ववेद के सम्पादन में इस से पर्याप्त सहायता ली थी। तदनन्तर व्हिट्ने ने स्वलिखित अथर्ववेदानुवाद की भूमिका में इस का उद्धरण किया। उक्त दोनों से पञ्चपटलिका की उपयोगिता का परिचय पाकर ही मैं ने इस ग्रन्थ के सम्पादन का साहस किया है। इस के सम्पादन में निम्नलिखित सामग्री काम में आई है।

हस्तलिखित वा प्रकाशित प्राप्त-सामग्री।

(अ) यह ग्रन्थ भण्डारकर अनुसन्धान समिति का है। उस

के सन् १९१६ के सूचीपत्रानुसार इस की संख्या ४०० है । इस सख्यान्तर्गत ग्रन्थ में आठ भिन्न २ पुस्तक हैं । उन में पञ्चपटलिका चतुर्थ स्थान पर है । इस का आरम्भ है पत्र ४८ से और समाप्ति है पत्र ५६ पर । इस के लेखन कालादि के विषय में अन्तिम पुस्तक की समाप्ति पर यह वचन मिलता है —

"संवंत् १७२७ वर्षे भाद्रपदमासे कृष्णपक्षे ११ रविवासरे अद्ये श्री अनहलपुर पतनमध्ये वास्तव्यं आभ्यंतर नागर ज्ञातीय पंचोली सोमजीसुत बृहस्पति जी पठनार्थं ॥ शुभं भवतु । कल्याणमस्तु ॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥ ॥"

यह पुस्तक स्पष्टाक्षरों में बहुत शुद्ध लिखा हुआ है ।

(ब) पूर्वोक्त सूचीपत्र में इस की संख्या ३९९ है । इस ग्रन्थ में इस के साथ तीन अन्य पुस्तकें हैं । स्थान इस का प्रथम और पत्र १—१० तक हैं । सूचीपत्र में लिखा है "The ms comes from Bikaner" अर्थात् हस्तलेख बीकानेर से आया है । यह इतना शुद्ध नहीं । कई स्थलों में बिन्दु दिये होने से प्रतीत होता है कि यह प्रति-लिपि किसी अति प्राचीन और कहीं २ कृमिभुक्त पुस्तक से की गई है । इस ग्रन्थ के अन्त में कोई तिथि नहीं दी गई । आकृति से यह लगभग तीन चौथाई शताब्दी का प्रतीत होता है ।

'अ' और 'ब' दोनों पुस्तकों का संशोधन हड़ताल से किया गया है ।

यह 'अ', 'ब' दोनों पुस्तक किसी एक से या एक प्रकृति वाले पुराने ग्रन्थों से नकल किये गये हैं । कारण कि दोनों में प्रायः एक सी अशुद्धियां, एक सा लेख और एक से ही अक्षर छूटे हैं । यह

यात मुद्रितपुस्तक के नीचे दिये हुए पाठभेदों के देखने से स्पष्ट ज्ञात होगी। यदि यह एक ही ग्रन्थ से नकल किये गये हैं तो यह कहना निरर्थक है कि 'अ' बहुत पहले नकल किया गया था और 'ब' बहुत पीछे। निश्चय ही 'ब' के लिखे जाने के समय मूलपुस्तक कृमिभुक्त होगया था या फट रहा था, क्योंकि जैसा पहले कहा गया है 'ब' में बहुधा विन्दु आते हैं।

(ङ) व्हिटने महाशय ने लण्डन बृटिश अजायबघर से अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी नकल की थी। उस का संशोधन उन्होंने एक बर्लिन के हस्तलेख से किया था। उस में पञ्चपटलिका के पाठ भी कई स्थलों पर उद्धृत किये गये हैं। वही पाठ व्हिटने रचित अथर्ववेदानुवाद के प्रत्येक अनुवाक की समाप्ति पर मिलते हैं। ये उद्धरण चतुर्थ और पञ्चमपटल के ही हैं। इन का पाठ कई स्थलों पर बहुत भ्रष्ट है।

(च) पण्डित शङ्करपाण्डुरङ्ग ने स्वसम्पादित अथर्ववेदीय सायणभाष्य के Critical Notice 'आलोचनात्मक विज्ञापन' में पञ्चपटलिका, पटल प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ और पञ्चम के अनेक वाक्य उद्धृत किये हैं। उन को देख कर व्हिटने रचित अनुवाद के सम्पादक श्री लैन्मैन ने लिखा था—

Manuscripts of Pancapatalika—Doubtless S. P. Pandit had a complete ms. of the treatise in his hands, It is not unlikely that the ms which S P Pandit used was one of those referred to by Aufrecht, Catalogus catalogorum, p 315, namely Nos 178 79 (on p. 61) of Kielhorn's Report on the search of Sanskrit mss. in the Bombay Presidency during the year 1880 81 (General Introduction (p LXXII)

१७९ तो हमारा 'अ' है। शंकरपाण्डुरङ्ग जी के पाठ इस से नहीं मिलते। अतः संभव है कि उन्होंने १७८ देखा हो जो हमारे पास नहीं है। इस से अधिक सम्भव यह भी है कि उन्होंने किसी अथर्ववेदीय श्रोत्रिय से अपने लिये यह पुस्तक प्राप्त किया हो, जो न जाने अब कहां होगा? इस अनुमान का यह कारण है कि पूर्वोक्त सूचीपत्र के १७८ और १७९ अंक वाले ग्रन्थ निकटस्थ स्थानों से प्राप्त होने के कारण, बहुत अंशों में एक दूसरे के समान प्रतीत होते हैं।

पञ्चपटलिका कब लिखी गई?

अथर्ववेद भाष्य ३।१०।७ के अन्त में सायण (वि० सं० १४०७–४४) का यह वचन है —

"पूर्णा दर्वीति पृथग्ग्रहणात् "ग्रहणम् आ ग्रहणात्" (कौ० ८।२१) इति न्यायात् विनियोगनिषये "आ मा पुष्टे च" इत्येकावसाना ऋक्। पञ्चपटलिकायां (३।११) तु त्र्यवसाना एकैव ऋग् इत्युक्तम्।"

यहां पञ्चपटलिका का मत उद्धृत किया गया है। इस के अनुसार ३।१०।७ तीन अवसानों वाली एक ही ऋचा है, परन्तु कौशिक सूत्रानुसार ये दो ऋचाएं हैं, पहली एक अवसान वाली और दूसरी दो अवसानों वाली।

कौ० ८।२१, पर टीका करते हुए दारिल लिखता है —

"पुनरुक्तप्रयोगः। पञ्चपटलिकायामेव कथितः। आर्षीसंहितायाः कर्मसंयोगात्। आचार्य संहिताभ्यासार्थः।"

यहां पर दारिल ने पञ्चपटलिका के उक्तानुक्त न्याय की ओर संकेत किया है।

अथर्ववेदीय परिशिष्ट सायण और दारिल से बहुत पूर्वकाल के हैं। उन में ४९ वां परिशिष्ट चरणव्यूह है। उस का वचन है —

"लक्षणग्रन्था भवन्ति । चतुरध्यायी, प्रातिशाख्यम्, पञ्चपटलिका, दन्त्योष्ठविधिः, बृहत्सर्वानुक्रमणी चेति ।"

अथर्ववेदीय सर्वानुक्रमणी पूर्वोक्त तीनों आचार्यों से निस्सन्देह बहुत पूर्वकालीन है। यह बात चरणव्यूह के पूर्वोद्धृत वाक्य से परिपुष्ट हो जाती है। उस में स्थल २ पर पञ्चपटलिका के अनेक वचन "इति" पद लगा कर या विना इसके लिखे गये हैं। अतः पञ्चपटलिका का काल पर्याप्त पुरातन है। कितना पुरातन, यह कहना अभी बहुत कठिन है।

उपर्युक्त काल-क्रम-शृंखला में एक और बात भी ध्यान देने योग्य है। पञ्चपटलिका के प्रथम श्लोक में ही परिचभ्रव का नाम आया है। यह पञ्चपटलिका उसी के मतानुसार कही गई है। इस परिचभ्रव आचार्य का पता अथर्ववेदीय साहित्य में हमें नहीं मिला। एक उपरिचभ्रव का पता कई स्थानों में लगता है। "पूर्वया कुर्वीतेति गार्ग्य, पार्थश्रवस, मागलि, काङ्कायन, उपरिचभ्रव, कौशिक, जाटिकायन, कौरपथयः" (कौ० ६।१०)। यहां आठ आचार्यों का नाम लिखा है। उपरिचभ्रव उन में पांचवां है। यदि हमारा परिचभ्रव इसका कोई सम्बन्धी है तो उसका मत जो पञ्चपटलिका में सम्प्रति मिलता है, अवश्य बहुत पुराना है।

संहिता-भेद।

पञ्चपटलिका ५।१७ में "आचार्यसंहिता" शब्द आया है। यह आचार्यसंहिता क्या थी, इस का निर्णय पूर्वोद्धृत दारिल के वाक्य में मिलता है। यथा—'आर्षी संहितायाः कर्मसंयोगात्। आचार्यसंहिताव्याख्यातार्यः" (कौ० ८।२१,२२)। इस से ज्ञात होता है

कि जिस संहिता में उक्तानुक्तविधि चरितार्थ हो वह आचार्यसंहिता और जो विनियोगार्थ हो वह आर्षी संहिता कहाती है। विनियोग में मन्त्रों की कोई मात्रा भी नहीं छोड़ी जाती अतः उस में उक्तानुक्त न्याय वर्त्ता नहीं आता।

संहिता-परिमाण।

हस्तलिखित जितनी शौनकीय संहितायें सम्प्रति मिलती हैं, वे सब बीस काण्डयुक्त हैं। सायणभाष्य भी बीसवें काण्ड के कुछ भाग पर मिल जाता है, यद्यपि उस में कुन्तापसूक्त (१२७-१३६) नहीं हैं। इन्हीं कुन्ताप सूक्तों के विषय में प्रायः विद्वानों का मत है कि इन का पदपाठ नहीं हुआ, क्योंकि आज तक अप्राप्त है। दयानन्द सरस्वती भी (सत्यार्थप्रकाश की समाप्ति पर अल्लोपनिषद् के आगे) अथर्वसंहिता को बीस काण्डयुक्त ही मानते हैं। ब्लूमफील्ड, व्हिट्ने आदि पाश्चात्य लेखकों का मत है कि १८ काण्ड ही मूल संहितान्तर्गत हैं। हरिप्रसाद ने वेदसर्वस्व के अथर्वसंहिता प्रकरण में मूलसंहिता को १८ काण्ड पर्यन्त ही माना है। ये विचार क्या २ आधार रखते हैं, और इन में से कौन सा सत्य अथवा माननीय है, इस का विचार अथर्व बृहत्सर्वानुक्रमणी के सम्पादन हो जाने के पश्चात् किया जा सकता है। इस लक्षण ग्रन्थ में बीसवें काण्ड के भी ऋषि, देवता, छन्दादि दिये हैं, यद्यपि उन का आधार आश्वलायन की अनुक्रमणी है। उस का वचन यह है —

"ओं अथाथर्वणो विंशतितमकाण्डस्य सूक्तसंख्या संप्रदायादृषिदैवतछन्दांस्याश्वलायनानुक्रमानुसारेणानुक्रमिष्यामः। खिला (नि) वर्जयित्वा।" एकादश पटल का प्रारम्भ।

यहां इतना कहा जा सकता है कि पाश्चात्य लेखकों ने पश्च-

पटलिका का आश्रय लिया है और इस में अठारह ही काण्डों का वर्णन है। देखो २।५ तथा ३।१२ इत्यादि।

पञ्चपटलिका में हमें एक ही बात खटकती है। वह है ३।१२ और ४।१७ में। ३।१२-के अन्त पर तो हमारी टिप्पणी भी है, यही बात ४।१७ के अन्त में आई है। दोनों स्थलों में काण्ड १७ का पहले वर्णन है और १८ का पीछे। उत्तर स्थल में "यम" काण्ड १८ के अनुवाकों में मन्त्र संख्या कह कर "विषासहि" प्रतीक धर के १७ वें काण्ड का उल्लेख है। अन्य सब स्थलों में क्रमशः काण्ड वा सूक्तों का उल्लेख और यहीं पर भेद विशेष सन्देहोत्पादक है। सम्भव है अथर्ववेदीय किसी अन्य शाखा में ऐसा ही काण्डक्रम हो और तत्सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थ यह पञ्चपटलिका आदि हों।

संहिता-विभाग।

अथर्ववेदसंहिता काण्ड, प्रपाठक, अनुवाक, सूक्त, मन्त्र, पर्याय, गण और अवसानों में विभक्त है। काण्ड रचना के सम्बन्ध में ब्लूमफील्ड और व्हिटने ने कल्पना की थी कि अठारह काण्ड तीन बड़े भागों में बांटे जा सकते हैं। अर्थात्—

बृहद्	भाग	प्रथम	काण्ड १—७
"	"	द्वितीय	" ८—१२
"	"	तृतीय	" १३-१८

इन तीनों में अनुवाक, सूक्त और ऋचा आदि की रचना भिन्न २ क्रम से पाई जाती है। पञ्चपटलिका में भी "तिसृणामाकृतीनाम्" शब्द के प्रयोग से तीन प्रकार का विभाग किया है, परन्तु वह विभाग इस से कुछ थोड़ा सा भिन्न है। पटलिका में दूसरा भाग ८—११ काण्डों का और तीसरा १२—१८ काण्डों का है। ऋचा-गणना के लिये पटलिका का क्रम अधिक उपयोगी है। यह बात पिछले गणना-कोष्ठों के देखने से सुस्पष्ट प्रतीत होती है। यदि व्हिटने

संस्करणानुसार प्रत्येक पर्याय–समूह को एक एक सूक्त मानें तो ८—११ काण्डों में दश २ सूक्त ही पाये जाते हैं। अतः बारहवां काण्ड अगले विभाग में मिलाया गया है।

अठारह काण्डों में कुल मन्त्र ४४२७ हैं। यह गणना ह्विट्नी से भिन्न है। उसके अनुसार मन्त्र–संख्या ४४३२ है। भिन्नता का कारण पर्याय–सूक्त हैं। यह सारा भेद ह्विट्नी के नोटों के देखने से विदित हो जाता है। हमने गणना पटलिकानुसार की है। इसी के अनुकूल मुम्बई संस्करण छपा है।

अथर्ववेद के प्रथम अठारह काण्डों में ३५ पैंतीस स्थलों पर ४५ पैंतालीस ऋचायें वही हैं जो इसी संहिता के पूर्व स्थलों में भी आ चुकी हैं। उन्नीसवें काण्ड में छः स्थलों पर सात दस ही ऋचायें हैं। इन्हीं ऋचाओं के सम्बन्ध में पटलिका १।४ में कुछ नियम लिखे गये हैं। यदि कोई अकेली ऋचा दोबारा आवे तो लिखित ग्रन्थों में "इत्येका", यदि दो आवें तो "इतिद्वे" इत्यादि लिखा होता है। इन्हीं सब ऋचाओं का क्रमशः वर्णन ह्विट्नी ने 'इण्डेक्स वर्बोरम' में किया था। उसी की संशोधित नकल ह्विट्नी के अनुवाद के पृ० cxix पर मिलती है। पाठकों के लाभार्थ हम उसे यहीं से उद्धृत कर देते हैं।

(१)	४	२७।	३	..........१	२८।३
(२)	५	६।	१	..........४	१।१
(३)			२		७।७
(४)		२३।	१०–२	..........२.	३२।३–५
(५)	६.	५८।	३	..........६.	३९।३
(६)		८३।	४	....	६३।३
(७)		९४।	१, २	..........३	८।५, ६
(८)		९५।	१, २	..........५.	४।३, [illegible]
(९)		१०१।	३	..........४	४।७

(१०)	७ २३। १	....	१०।१५
(११)	७५। १	....	२११।७
(१२)	११२। २	....	६. ९६। २
(१३)	८. ३।१८	....	५. २९।११
(१४)	२२	....	७ ७१। १
(१५)	९।११	....	३. १०। ४
(१६)	९. १।१५	....	८. ८६। २
(१७)	३।२३	....	३. १२। ९
(१८)	१०। ४	....	७. ७३। ७
(१९)	२०	....	११
(२०)	२२	....	६. २२। १
(२१)	१०. १। ४	....	४. १८। ५
(२२)	३। ५	....	६. ८४। १
(२३)	५।४६–७	....	७. ८६। १,२
(२४)	४८–६	....	८. ३।१२–३
(२५)	११. १०।१७	....	५. ८। ६
(२६)	१३. १।४१	....	९ ९।१७
(२७)	२।३८	....	१०. ८।१८
(२८)	१४. १।२३–४	....	७ ८२। १–२
(२९)	२।४५	....	११२। १
(३०)	१८. १।२७–८	....	८२।४,५
(३१)	३।५७	....	१२ २।३१
(३२)	४।२५	....	१८. ३।८८
(३३)	४३	....	९९
(३४)	४५–७	....	१।४१–३
(३५)	९९	....	७. ८३।३

(१) १६.	१३। ६	...	...	...	६. ६९। ३
(२)	२३।३०	...	...	...	१६. २२।२१
(३)	२४। ४	...	...	...	२. १३। २
(४)	२७।'४-५	...	...	...	१६ १६। १,२
(५)	३७। ४	...	...	...	५ २८।१३
(६)	५८। ५	...	...	...	२. ३५।५

ऋग्वेद वा अथर्ववेद में ऋचा–गणना प्रकार।

ऋग्वेदीय कात्यायन सर्वानुक्रमणी के परिभाषा प्रकरण में एक सूत्र है। 'द्विद्विपदास्त्वृचः समामनन्ति' १२।८ अर्थात् अध्ययन समय में वेदपाठी लोग दो २ द्विपदा ऋचाओं को एक २ बना कर पढ़ते हैं। इस नियमानुसार ऋग्वेद के कुल मन्त्रों की गणना के समय इन द्विपदा ऋचाओं को द्विगुण करके गणना की जाती है। ऐसी द्विपदा ऋचाएं अथर्व संहिता में भी देख पड़ती है। उन्हें हम व्हिटने के अनुवाद से लेकर नीचे देते हैं।

कां०	सू०	ऋचा	
२	१८	१–५	एकावसान।
५	१६	१–११	"
६	७,प०१	१–६*, ८–१७, २०– १, २४– ६,	"
१६	१८	१–१०	दो अवसान।

* व्हिटने ने सातवीं ऋचा को एकपदा माना है। बीकानेर वाली सर्वानुक्रमणी में ऐसा लेख हमें नहीं मिला। तदनुसार यह भी द्विपदा है।

यहां पर पहले तीनों स्थलों की छिन्न ऋचाओं की गणना पटलिका में की गई है। यहां इन ऋचाओं को द्विगुण नहीं किया गया।

उन्नीसवां काण्ड पटलिका में आया नहीं, अतः उस की ऋचा-गणना सर्वानुक्रमणी से मिला ली गई है। अन्तिम उदाहरण दो अवसानों का है और पहले तीनों में त्र्यवसान ऋचाएं हैं। कात्यायन अपनी सर्वानुक्रमणी में त्र्य. की अवसान वाली ऋचाओं को ही द्विगुण करता है, एकादशानों को नहीं। बृहत्सर्वानुक्रमणी वाले ने तो दो अवसान वाली ऋचाओं को भी द्विगुण नहीं किया। अतएव ज. गणनाएं हमने ऊपर दी हैं वे इन विषयों पर अधिक प्रकाश पड़ने के अनन्तर कदाचित फिर बदलनी पड़ें।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में ऋचाओं के अवसानों की तुलना।

अथर्ववेदीय कोई एकावसाना ऋचा नहीं मिलती। त्र्यवसान ऋचाओं में से पांच के कुछ २ भाग ऋग्वेद में मिलते हैं। इस से यह न विचारना चाहिये कि वे ऋग्वेद से लिये गये थे और काल-क्रम के कारण इस अवस्था को पहुंच गये हैं। आर्य इतिहासानुसार अथर्ववेद भी उतना ही प्राचीन है जितना कि ऋग्वेद अतएव अनेक सदृश वाक्य या वाक्य-समूह दोनों ग्रन्थों में प्रसंगतः कर्ता परमात्मा के एक होने से एक से आ सकते हैं। इसी प्रकार का अगली मन्त्र-तुलना में एक छठा मन्त्र है। वह हमारे कथन को परिपुष्ट करता है। यह छः मन्त्र वा मन्त्रभाग ऋग्वेदीय सदृश मन्त्र वा मन्त्रभागों के साथ विशेष विचारार्थ नीचे दिए जाते हैं।

अथर्ववेदीय त्र्यवसान ऋचाएं ।	ऋग्वेदीय द्व्यवसान ऋचाएं ।
(१) इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम । प्रथमावसान ३।१५।४	इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इमसध्वानं यमगाम दूरात् । प्रथमावसान १।३१।१६
(२) यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्व धि क्षियन्ति भुवनानि विश्वा । प्रथमावसान ७।२६।३	.... , ...,..... . ..., द्वितीयावसान १।१५४।२
(३) स्वस्तिदा विशांपतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । प्रथमावसान ८।५।२२	स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । प्रथमावसान १०।१५२।२
(४) उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह । सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । प्रथम, द्वितीयावसान १७।१।२४	.... सहसा सह । द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥ आद्यन्त मन्त्र १।५०।१३
(५) शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति । मण्डूक्य १ प्सु शंभुव इमं स्व १ ग्निं शमय ॥ द्वितीय, तृतीयावसान १८।३।६०	.. . . मण्डूक्या ३ सु संगम इमं स्व १- ग्निं हर्षय ॥ आद्यन्त मन्त्र १०।१६।१४
(६) आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् । यद् घ सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ आद्यन्त मन्त्र १८।४।८८	आ ते अग्न इधीमहि ....यद्धस्याते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर । आद्यन्तमन्त्र ५।६।४

उपर्युक्त छठा मन्त्र कुछ पाठ-भेद के साथ ही ऋग्वेद में भी मिल जाता है। अथर्ववेद में त्र्यवसान और ऋग्वेद में दो ही अवसानों वाला है। इस मन्त्र पर व्हिटने ने स्वानुवाद में एक नोट दिया है। 'यह मन्त्र ऋग्वेद ५।६।४, सामवेद १।४१६ और २।३७२, तै० सं० ४।४।४।६ और मै० सं० २।१३।७ में मिलता है। इन सब ग्रन्थों का पाठ ऋग्वेद के समान है। शङ्कर-पाण्डुरङ्ग तीसरे पाद में 'यद् ध' पढ़ता है। हमारे हस्तलिखित ग्रन्थों में 'यद् ध' (पद पा० यत्। ह) मिलता है।' पाश्चात्य लेखकों के अनुसार यदि यह मन्त्र मूलतः ऋग्वेद का था और वैसा ही सामवेद वा अन्य शाखाओं में मिलता है तो अथर्ववेद में इसका अकारण बदला जाना अवश्य अमान्य होगा। वे वैदिक आर्य्य जिनकी स्मृति शक्ति के सामने सारा संसार नतशिर है, इतनी शीघ्रता से अपनी मान्य पुस्तक वेद के विषय में भूलने वाले न थे। और जो यह कारण कहो कि उन्हों ने ऋग्वेद से पिछली संहिताओं में भाषा-परिवर्तन वा अन्य भेदों द्वारा पहले मन्त्रों को सरल करना चाहा तो भी युक्त नहीं। हम पूर्व कह आये हैं कि मूल अथर्ववेद ऋग्वेद जितना ही पुराना है, अतएव उस में तो ऋग्वेद के पाठ न आ सकते थे। शौनकीय अथर्ववेद यही मूलवेद है या नहीं, यह हम अभी नहीं कहते, परन्तु यह निश्चय ही सन्देह-सीमा से ऊपर है कि अथर्ववेद में ऋग्वेद से मन्त्र न लिये गये थे। ऐसी अवस्था में पूर्व दिये हुए मन्त्र कुछ और ही परिणाम देंगे, अर्थात् कर्त्ता परमात्मा ने मूल चार संहिताएं चार ऋषियों के हृदय में स्वतन्त्ररूपेण प्रकाशित कीं। हमारे इस लेख पर अनेक लोग आक्षेप करेंगे। उन से हम यही निवेदन कर देते हैं कि यहां यह बात केवल प्रसंगतः कही गई है; इसका सप्रमाण निरूपण हमारे एक और ग्रन्थ में है जो शीघ्र ही छपेगा। उसके देखने के अनन्तर जिस की जो इच्छा हो कहे।

कुछ पटलिका के अनुवाद के सम्बन्ध में।

हमारे पास उक्तानुक्त-नियम-क्रम को साक्षात् देखने के लिये कोई लिखित संहिता न थी, अतएव प्रथम पटल के अनुवाद में बहुत सन्देह रहा है। अनुवाद हम ने इस लिये दे दिया है कि आगे इस से सहायता ली जा सकेगी। पटलिका के अनेक पाठ सन्दिग्ध ही रहे हैं। उन के विषय में हम कुछ कर नहीं सकते थे। हस्तलिखित सामग्री अत्यल्प थी। मूल ग्रन्थ या अनुवादादि में जो प्रतीकादि का पता दिया गया है वह बर्लिन संस्करणानुसार है। अजमेर संस्करण इस की नकलमात्र है।

इस ग्रन्थ की अनेक बातों के समझने और पाठादि निर्धारित करने में अपने कालेज के बी० ए० के विद्यार्थी शास्त्री भीमदेव ने मुझे बड़ी सहायता दी है। मेरे मित्र पं० विश्वबन्धु एम० ए० ने भी मुझे कई स्थलों पर अपनी सम्मति देकर कृतार्थ किया है। म० देवराज विद्यार्थी बी० ए० श्रेणी तो बहुत काल से मेरे ग्रन्थों का प्रूफ संशोधन करते ही हैं। इन सब सज्जनों का मैं हार्दिक धन्यवाद करता हूं। अन्य अनेक विद्वानों के प्रति भी कि जिन के ग्रन्थों से मैं ने बहुत सहायता प्राप्त की है, मैं यहां अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करता हूं। अन्त में महाशय ए० सी० वूलनर एम० ए० प्रिन्सिपल ओरियण्टल कालेज तथा श्री डाक्टर घेलेसल दर एम० ए० का मैं अतीव धन्यवाद करता हूं कि जिनकी उदारता से मुझे मूल हस्तलेख प्राप्त हुए।

सर्वान्तर्यामी,वेदप्रकाशक आदिगुरु परमात्मा सर्व आर्य्यजनों के हृदयों में पुनरपि वेदादि सत्य शास्त्रों के पढ़ने का उत्साह उत्पन्न करें। इत्योम्।

दयानन्द ऐ० वे० कालेज
लालचन्द्र पुस्तकालय लाहौर,
ज्येष्ठ वदि१३रवि वि०सं० १९८३

भगवद्दत्त

अथ

अथर्ववेदीय-पञ्चपटलिका



ओं

उक्तानुक्तस्य यं न्यायं प्रोवाच परिवेभ्रुवः।
पर्यायाणामृचां चापि तद्वक्ष्यामो यथाक्रमम्।
बहूना मव्यवेताना मनेकं सदृशं पदम्।
आदिष्टं[1] तेषु वा यत्स्यात्तदु[2]क्तानुक्तमुच्यते।
तदुत्पत्तौ तु संशब्दमंत्ये प्रकरणस्य च।
अन्यत्रैकं पदं वाच्यं तस्यारंभविरामयोः।
अंत्य[3]मारंभणं विद्याद्वाद्यं विरमणं भवेत्।
ते हरः[4], मातरिश्वे[5], च विद्यादत्र निदर्शनम्।
यतस्तूर्द्ध्वं निवृत्तिः[6] स्यादाद्यस्यांत्यस्य वा पुनः।
तेनैव तत्र वक्तव्ये तयोश्चानंतरे पदे।
ने चक्षु[7], मूकसत्तम्यां दिशो वायु[8]र्निदर्शनम् ॥१॥
आकारो यत्र वाच्यं स्या[9]त्तत्रापि द्वे पदे वदेत्।
सा पितृन्प्रभृतिष्वे[10]हीत्येतदत्र निदर्शनम्।
अवसानैकदेशश्च यो गच्छेदवसानताम्।
प्रक्रमस्य समाप्त्यर्थं तत्रापि द्वे पदे वदेत्।
यांज[11], स्कभत[12]मित्येते विद्यादत्र निदर्शनम्।

अवसानं तु यद्भूत्वा भवेद्वयवः पुनः।

---

१. अ, आदिष्ट ॥ २. अ, ब, सातदुक्त ॥ ३. अ, ब, अस्य ॥
४. २।१६।२॥ ५. ८।१०२, १॥ ६. अ, ब, निवृत्ति ॥ ७. ५।३१।१॥
८. ५।१०।१॥ ९. ब, सातत्र ॥ १०. ८।१०७, २॥ ११. ६।५।२२॥ १२. १०।७।४॥

यांत्या यदवसानानां[1] तासामप्येवमुत्सृजेत् ।
वीरुतक्षेत्रिय नाशनी[2]त्येतदत्र निदर्शनम् ।
अवसानं तु यत्तुल्यं सर्वमेवतदुत्सृजेत् ।
तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चत[3], वैकुर्वत[4] निदर्शनम् ।
यास्वेषविधिरुक्तासु तासु सर्वासु वेदवित् ।
सदृग्यंत्यवसानानां तासामप्येवमुत्सृजेत् ।
यथाच्छोश्च[5], शेरभक[6], यो वै नैदाघ नाम[7] ।
यथा वातो[8] वनस्पतीनित्येतदत्र निदर्शनम् ॥२॥

नानावसानयोर्भूत्वा यदेकस्मिन्पुनर्भवेत् ।
तेनैव सत्समासत्व मेकस्मिन्चापि कीर्तयेत् ।
इमिमाशु[9]ताभ्या[10] च विद्यादत्र निदर्शनम् ।
पर्यायेष्ववसानानामृग्भिस्तुल्योविधिर्भवेत् ।
सर्वदा[11], चित्र्भिस्येते[12] वैपरेत[13] निदर्शनम् ।
गद्यास्तु ये वसानानां संबंधार्थाः पृथक्पृथक् ।
तेष्वयां विधिवद्वोध्याः[14] सोदक्राम[15] निदर्शनम् ।
अव्ययेषु च यद्दृष्टं[16] व्यवेतेष्वपि दृश्यते ।
तत्तुल्यं व्यवधीयेत तस्मिंस्तत्कीर्तयेत्सकृत् ।
यदेनमाह व्रात्येति[17] चतुर्थस्तं निदर्शनम् ।

---

१. व यमानां ॥ २. ३।५।२॥ ३. अ, व, तमिद्र. प्रत्यमुचत ॥ ४. ९।५।३२॥ ५. २।१४।१॥ ६. २।२४।१॥ ७. अ, व, श्राम, ९।५।१,३१ ॥ ८. १०।४।१३॥ ९. १८।२।७४॥ १०. ४।१४।८॥ ११. १०।८।१२॥ १२. १२।८।१॥ १३. व, विद्यादत्र॥ १४. व, वि (दि !) विधिः॥ १५. ८।१०।२॥ १६. अ, व, यदृष्टं ॥ १७. १५।११।५ ॥

अत उर्द्ध्वं यथोक्तेन न्यायेन पुनरुत्सृजेत् ।
अन्ते च कीर्त्तयेत्तेन ते वद इति निदर्शनम् ॥३॥
ऋचस्तुल्याः पुनश्चे[1]त्स्युर्यावत्तासां विशेषणम् ।
तावदुक्त्वा यथाशास्त्रमिति नासंदधीति च ।
ततः संख्यां प्रयुञ्जीत या श[2]तापेति निदर्शनम् ।
द्वयोः म वो मना[3]सीति तिसृणामश्रियत्स्मृतं ।
एकेति यत्र संदेहः पूर्वेत्येनां विशेषयेत् ।
याने धा[4]वा इति पूर्वस्येतदत्र निदर्शनम् ।
यत्र द्वे इति संदेह आद्यौ तत्र च कीर्त्तयेत् ।
पूर्वा[5]परं, नवो[6] नव इत्येतदत्र निदर्शनम् ।
एका मिति नामदेशे द्वे तिस्र इति कीर्त्तयेत् ।
वर्गं चर्चा पदांत्याद्युर्यावत्तासां विशेषणम् ॥ ४ ॥

इति प्रथमः पटलः समाप्तः ॥

---

१. अ, ब, पुन- श्चेत ॥ २. १।२८।३॥ ४।१७।३॥ ३. ३।८।५॥ ८।९४।१॥ ४. १८।३।८९॥ १८।४।२८॥ ५. ७।८१।१॥ [१३।२।११॥] १४।१।२३॥ ६ १४।१।२४॥

मावमयातः छंदसि। तिसृणामाकृतीनां सूक्तवर्गाक मृग्य[1] पर्या-
यिक यजुपामवसानं च[2] विज्ञानाय व्याख्यास्यामः। चतुर्षु कांडेष्वादितः
पंचसूक्ता अनुवाकाः षड्वर्जम्[3]। महत्स्वेक वर्जम्। दश सूक्तास्तृचेषु
पंचवर्जम्। ऋकसूक्ता एकर्चेषु। द्विसूक्ताः क्षुद्रेषु। अनुवाकसूक्ता
एकानृचेषु। कांडसूक्ताः शेषे पर्यायिकवर्जम्। व्रात्यप्राजापत्योरेव
पृथग्विभावित सूक्तं यत्। सूक्तावस्था यथा कांडम्। तत्र न प्रत्युपायो न
दुर्यापयः? आपयादिका न्यधिकानि। महत्सु कांड समवायोऽष्टर्च प्रभृ-
तीनामाकृतीना. मष्टादशेभ्यः षोडशवर्जम् ॥५॥

ये[4] त्रिषप्ता (१।१[5]) ये ३ स्थांस (३।८) यथेक वृषोसि (५।४)
इति पञ्चसूक्ताः। अनु सूर्यमुदयताम् (१।५) अभीवर्तेन (१।८) दृष्या
दृषिरसि (२।३) इति सप्तसूक्ताः। भ्रातृव्यक्षयणम् (२।७) इति नवसूक्ताः।
इमा यास्तिस्रः पृथिवीः (६।३) वैश्वानरः[6] (६।७) संदानं वो (६।११)
यद्देवा देवहेडनम् (६।१२) इत्येकादशसूक्ता। वनस्पते वीड्वंगः (६।१?)
इत्यष्टादशसूक्ताः। एकर्चेषु प्रथमचतुर्थौ त्रयोदशसूक्तौ। द्वितीयाष्टमौ नव। तृती-
याष्टौ षोडश। पंचम[7]सप्तमावष्टौ। षष्ठश्चतुर्दश। नवमो द्वादश ॥६॥

यिदमा दारस्य पितरम् (कां० १ सू० २) द्वितीय नवकम्। स्तुवान-
मग्ने (७) सप्त। धाता ते पूषन् (१।११) अभीवर्तेन (२९) इति षट्क।
इयं वीरुत् (३४) इति पञ्च।

---

१. ब, गिन्य॥ २. ब में नहीं है। भ में भी पीछे हाशिये पर लिखा गया है॥ ३. भ, ब, षड्वर्जं॥ ४. भ, ब, य॥ ५. इन कोष्ठों में काण्ड और अनुवाक दिये हैं॥ ६. भ, ब, विश्वानरः॥ ७. द, पञ्चम॥

भद्रो यद्यधावति (२ । ३), दीर्घायुत्वाय (४) इति षट्क । इन्द्र जुषस्व (५) इति सप्त । क्षेत्रियात् त्वा[1] (१०) द्यावापृथिवी उरु (१२) इत्यष्टके । निः सालां धृष्णुम् (१४), यथा द्यौश्च (१५) इति षट्क । ओजोऽस्योजो मे (१७) सप्त । शेरभक (२४) अष्टौ । ने छत्रुः (२७), पार्थिवस्य (२९) इति सप्तक । उद्यन्नादित्यः (३२) षट् । अचीभ्यां ते (३३) सप्त । आ नो अग्ने (३६) अष्टौ ।

आ त्वा गन् (३ । ४) सप्त । आयमगन् (५), पुमान्पुंसः[2] (६) अष्टके । हरिणस्य (७) इति सप्त । प्रथमा ह (१०) त्रयोदश । मुंचामि त्वा (११) अष्टौ । इहैव[3] ध्रुवाम् (१२) नव । यददः संप्रयतीः (१३) सप्त । इन्द्रमहम् (१५) अष्टौ । प्रातरग्निं[4] (१६) सप्त । सीरा युंजंति (१७) इति नव । संशितं मे (१९) अष्टौ । अयं ते योनिः (२०), ये अग्नयो (२१) दशके । [5]यस्वतीः (२४) सप्त । यद्राजानो (२९) अष्टौ । सहृदयम् (३०) सप्त । अदेवा (३१) एकादश ।

य आत्मदा (४।२), यां त्वा गन्धर्वो अखनद् (४), ब्राह्मणो जज्ञे (६) इत्यष्टकानि । एहि जीवम् (९) दश । अनड्वान दाधार (११) द्वादश । अजो ह्यग्नेः (१४) नव । समुत्पतन्तु (१५) षोडश । बृहन्नेषाम्[6] (१६) नव । ईशानां त्वा (१७), समं ज्योतिः (१८), उतो अस्य[7] बन्धुकृद् (१९) इत्यष्टकानि । आ पश्यति (२०) नव । अहं रुद्रेभिः (३०), अप नः शोशुचदघम्

---

1. अ, ब, क्षेत्रिया ॥ 2. अ, ब, पुसः ॥ 3. अ, ब, इहिव । यह अशुद्धि साधारणतया हो सकती है । 'अ' प्रकार के पुराने ग्रन्थों में हि=है बनता है । अतः लेखक प्रमाद से यही हि हो गया है ॥ 4. अ, ब, तरग्निं ॥ 5. अ, ब, पयः ॥ 6. अ, ब, बृहन्नेषा ॥ 7. उस्य ॥

(३३) ब्रह्मास्य शीर्षं बृहद् (३४) इत्यष्टकानि । तांसत्यौजाः (३६) दश । त्वया पूर्वम् (३७) द्वादश । पृथिव्यामग्नये (३९) दश । ये पुरस्ताज्जुह्वति (४०) इत्यष्टौ ।

अयङ्मणिः (५।१), तद्विदास (२) इति नवके । ममाग्ने वर्चः (३) एकादश । यो गिरिषु (४) दश । रात्रि माता (५) नव । ब्रह्म जज्ञानम् (६) चतुर्दश । आ नो भर (७) दश । वैकङ्कतेन (८) इति नव । दिवे स्वाहा (९), अश्म वर्म मेसि (१०) इत्यष्टके ।

विच्छेद दोषस्तु पूर्वस्मिन्पार्श्वे ये व्यवसायने च देवहेडनो ब्रह्मगव्यामिनरसा-मेव मेतमनुवैचान्यष्टर्चा न व्यामिमीतान्यत आगमोहि ॥ ७ ॥

कथं महे (५।११), समिद्धो अद्य (१२), ददिर्हि मह्यम् (१३) इत्येका-दशकानि । सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् (१४) त्रयोदश । एका च मे (१५), यद्येक-वृषो.सि (१६) इत्येकादशके । ते वदन् (१७) अष्टादश । नैतां ते (१८), अतिमात्रम् (१९) इति पंचदशके । उच्चैर्घोषः (२०), विहृदयम् (२१) इति द्वादशके । अग्निस्तक्मानम् (२२) चतुर्दश । ओते मे द्यावापृथिवी (२३) त्रयोदश । सविता प्रसवानाम् (२४) इति सप्तदश । पर्वताद्दिवो योनेः (२५) इति त्रयोदश । यजूंषि यज्ञे (२६), ऊर्ध्वा अस्य (२७) इति द्वादशके । नव प्राणान् (२८) चतुर्दश । पुरस्ताद्युक्तो वह (२९) पंचदश । आयतस्ते (३०) सप्तदश । यां ते चक्रुः (३१) द्वादश ॥ ८ ॥

आयर्या (८।१६), यथेयं पृथिवी मही (१७), सिंहे व्याघ्रे (३८), यत्ते देवा निर्ऋतिः (९३), य एनं परिषीदन्ति (७६), अपचितः प्रपतत

---

१. अ, मंत्र ॥ २. अ, ब, वैकङ्केन ॥ ३ ब, व ॥ ४. ब, व्यमीमीता ॥

(८३), यस्यास्त आसनि घोरे जुहोमि (८४), विश्वजित्[1] त्रायमाणायै मा परि देहि (१०७), इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्धि (१११), विषाणा पाशान्विष्याध्यस्मद् (१२१), शकधूमं नक्षत्राणि (१२८), राथजितां राथजितेयीनाम् (१३०) इति तत्रेषु चतुर्थचानि द्वादश।

प्राग्नये वाचमीरय (३४), त्वं नो मेध (१०८), एतं भागम् (१२२), एतं सधस्थाः (१२३), यं देवाः स्मरमसिंचन् (१३२), य इमां देवो मेखलामाबबंध (१३३), त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमा (१३८), न्यस्तिका-रुरोहिथ (१३९) इति तत्रेषु पचर्चान्यष्टौ॥८॥

धीती वा ये (कां० ७ सू० १), यथा सूर्य (सू० १३), प्र नमस्व (१८), अयं सहस्रम् (२२), ययोरोजसा (२५), अग्नाविष्णू महि (२९), यस्य व्रतम् (४०), अति धन्वानि (४१) इति द्वे (४२)। जनाद्विश्वजनीनात् (४५), कुहूं देवीम् (४७) इति त्रीणि (४८ तथा ४९)। संज्ञानं न. (५२), ऋचं साम (५४), यदाशसा (५७) इति द्वे (५८)। यदग्ने तपसा (६१), इदं यत् कृष्णः (६४), प्रजावती (७५), वि ते मुञ्चामि (७८), यो नस्तायत् (१०८), शुम्भनी (११२) त्रीणि[2] (११३ तथा ११४)। नमो रूराय (११६) इति दृचानि एकर्चेषु।

प्रान्यात् (३५), सिनीवालि (४६), प्रतीचीनफल (६५), सरस्वति व्रतेषु (६८), उत्तिष्ठताव (७२), सांतपना (७७), अनाधृष्यः [८४] अपि वृश्च [९०], उदस्य श्यावौ [९५], अग्न इन्द्रश्च [११०] इति तृचानि।

---

१ अ, विश्वजि। ब, विश्वानि॥ अ में भी 'न' को ही पीछे से 'ज' बनाया गया है॥ २ इति त्रीणि॥

अदितिर्द्यौः [६], अपथे पथाम् [९], सभा च मा [१२], अभि त्वम् देवम् [१४], धाता दधातु नः [१७], यत्ते देवा अकृण्वन् [७९], पूर्णा पश्चात् [८०] इत्यत्रैकर्चे प्राजापत्यम् । अप्सु ते राजन् [८३], अपो दिव्याः [८९], प्र पतेतः [११५] इति चतुर्ऋचानि ।

यद्येन यज्ञम् [५], इदं खनामि [३८], यत्किंचासौ [७०] इति पंचर्चानि ।

अन्यद्य नः [२०], पूर्वापरम् [८१] अभ्यर्चत [८२] इति षडर्चानि ।

अमुत्रभूयात् [५३], ऊर्जं बिभ्रत् [६०], इदमुग्राय [१०९] इति सप्तर्चानि ।

यिप्यांनु कम् [१६], निरक्षिराजेः [५६], यदद्य त्वा [९७] इति अष्टर्चानि ।

यथा वृक्षम् [५०] इति नवर्चं सूक्तम् ।

समिद्धो अग्निर्वृषणा [७३] इत्येकादशर्चे घर्मसूक्तम् ।

अपचिताम् [७४] इति तदर्थे सूक्तानि[1] चत्वारि । अपचिन्द्रेपजम् । ईर्ष्यापनयनम् । व्रतोपायनम् । गोष्ठव्रतीयम्[2] च ॥९॥

इति द्वितीयः पटलः समाप्तः[3] ।

---

१. ग, इत्यद [मिति द्वे अ ?] र्थसूक्तानि ॥ २. ग, व्रजीयम् ॥
३. अ, ब, इति द्वितीयो ध्यायः पटलः समाप्तः ॥

आर्षेयपार्षदे पूर्वं प्रोक्ता सूक्ता प्रथमस्त्वया।
नियत यैं[1] ऋचामग्र ऋषिभिश्च महापथ.।
सूक्तानां परिमाणार्थं ऋचामग्र प्रमाणितम्।
ऋचाग्रेण तु सूक्ताग्र सूक्ताग्रेण तु संहिताम्।
तस्मात्सूक्ताग्रपरिमाणेन[2] तपसाधीत्य संहिताम्।
आर्षेयी ऋषिभिरभ्यस्तां सूक्तं. सम्प्रदायामधीमहे ॥१०॥

सस्यासायस्सभ्यमस्तु राति. (१।२६।२), सुपूदत मृडत (४)।

प्राणापानौ (२।१६।१) शैरभके[3]यात।

मुमुक्तमस्मान् (५।६।८), दिवे स्वाहा (६।१—६) इति पद । यद्येक-वृषोसि (१६) इत्येकादश। यजूंषि यज्ञे (२६।१—११) इत्युत्तमा वर्जयित्वा। देवो देवेषु (२७।२—७) इति पद्।

पृथिव्यै श्रोत्राय (६।११) इति तिस्र । व्रीहिं स्वाम् (८।३।४), स पचामि (१२।३।४), दह मलान् (१३।६।२)।

अथ सहस्रमा नो (७।२२।१), योऽन्येद्यु (११६।२)।

ते त्वा रक्षन्तु (८।१।१४)।

पृथिवी दड. (६।१।२१), प्राच्या दिश शालाया (३।२५—३१) साहस्र इत्यात । तास्ते रक्षन्तु तत्र (५।३८)।

सोमो राजा (१०।१।२२), इमे मयूखा (७।४४)।

चक्षु श्रोत्रम् (११।५।२५)।

सा न प्रजा (१२।१।१६), अग्निवासा (२१), अग्ने अकव्याद्

---

१ अ, ब, नै ॥ २ ब, तस्मात्सूक्ताग्रति ॥ ३ अर्थात् शैरभक (२४) स पूर्व सूक्त २३ के अन्त तक ॥

(२।४२), अन्तर्धिर्देवानाम् (४४), सर्वानग्ने (४६) ।

धर्तासि धरुणोसि (१८।३।३६), उदपूरसि (३७), अचितिम् (४।३७), शुंभन्तां लोकाः पितृषदनाः (६७) इति द्वे । अग्नये कव्यवाहनाय (७१) इति प्रभृति येच पितरः (८६) इत्यतः एकावसानाः ॥११॥

शं ते अग्निः (२।१०।२) इति मम ॥

आमा पुत्रे च पौत्रे च (३।१०।७), अभित्वा जरिमाहित (११।८), इमामग्ने शरणिम् (१५।४), उदयन्ताम् (१२।६), यत्ते वर्चः (२२।४), प्राची दिक् (२७) इति षट्क । क इदम् (२६।७) ।

इन्द्रो रूपेण (४।११।७), एष यज्ञानाम् (३४।५), नद्यैं व स्वप्सरसः (३७।३), या यैः परिनृत्यति (३८।३), सूर्यस्य रश्मीन् (५), अन्तरिक्षेण (७) इत्युत्तमाम्[1] । पृथिवी धेनुः (३६।२), अन्तरिक्षं धेनुः (४), द्यौर्धेनुः (६), दिशो धेनवः (८) ।

अर्धमर्धेन (५।१।६), इन्द्रायाहि (८।२), अश्वेनाग्निन्द्र वृत्रहन् (६), उदायुषद् (६।८), बृहता मनः (१०।८), देवो देवाय (११।११), अयं लोकः (३०।१७) ।

अवैरहत्याय (६।२६।३), विद्म ते स्वप्न जनित्रम् (४६।२), यथा मांसम् (७०।१) इति तिस्रः (२ तथा ३), यो अद्भयः (१२७।३), न्यस्तिका रुरोहिथ (१३६।१) ।

यस्यांरुपु (७।२६।३), पदज्ञाः स्थ (७५।२), अपेह्यरिः (८८।१), यथा सोपः (६०।३) ।

---

१. वर्लिन संस्करण में यह ऋचा दो अवसानों वाली है । मुम्बई संस्करण में तीन अवसान हैं ॥

मा त्वा क्रव्यात् (८।११२), चित्रे ते स्ताम (२।१४), कश्यपस्त्वाम (५।१४), स्वस्तिदा[1] (२२), ये शालाः (६।१०), येषां पश्चात् (१५), उद्धर्षिणाम् (१७), याः सुपर्णाः (७।२४) इन्द्रो जय (८।२४)।

यद्गोधे (६।१२४), अन्तरा द्याम् (३।१५)।

आरे अभूत् (१०।४।२६), अंशमीगस्य (५।७) न्यग्दौ (८—१४)। विष्णोः क्रमोऽसि (२५) इन्द्रेणदत्त (२६—३५)। नमिन्द्रः (६।७) इति चतस्र (८—१०), तेनेमां मणिना कृषिम् (१२) इति षट् (१३—१७)। उत्तरं द्विषत. (३१), ये पुरुषे (७।२७)।

नमस्ते घं पिपीलिभ्यः (११।२।३१), ये बाधवः (६।१), अर्बुदिर्नाम (४), अन्वतीरप्सरस (१५), यद्द्वेऽधिचंक्रमाम (१९), ये च धीराः (२२), वनस्पतीन्वानस्पत्यान् (२४), ईशां वो मरुतां देव (२५), ईशां वो वेदराज्यम् (१०।२), वायुरमित्राणाम् (१९)।

यत्नानेऽध्यि (१२।१।८), यामश्विनौ (१०) इति चतस्रः (११—१३)। महत्सधस्थम् (१८), भूम्यां देवेभ्यः (२२), यस्ते गन्धः पुरुषेषु (२५), यच्छयानः पर्यावर्ते (३४), यावत्ते विजमाना विमृग्वरी (३७), यस्यां सदो हविर्धाने (३८), यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति (४१), यां द्विपाद. पक्षिण. संपतन्ति (५१), प्राच्यै त्वा दिशे (३।५५) इति षट् (५६-६०)।

---

१ वर्लिन संस्करण में चार अवसान है। मुम्बई संस्करण में तीन अवसान देकर नीचे टिप्पण दिया है कि A R put a vertical stop after ॰ जित ।

यस्माद्वाताः (१३।३।२), यो मारयाति[1] (३), यः प्राणेन[1] (४), अहा रात्रैर्विमितम्[1] (८), सम्यञ्च तन्तुम्[1] (२०), वि य प्रौर्णोत्[2] (२२) ।

इदं सु मे (१४।२।६), अङ्गादङ्गात् (६९) ।

शं ते नीहारो भवतु (१८।३।६०), यद्य पाति (४।१३), आ त्वा अग्न[3] इधीमहि (८८) इति ।

पिपासहिं सहमानम्[1] (१७।१।१) इत्यष्टौ (२–८) । त्वं न इन्द्रोतिभिः (१०) इति चतस्र (११–१३) । त्वं रक्षसे (१६), त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रः (१८) इति द्वे (१९) । उदगादयमादित्यः (२४) इति त्र्यवसानाः[4] ॥१२॥

यो वै नैदाघं नाम (१।५।३१), यो व आपोऽपां भाग (१०।५।१५) इति सप्त (१९–२१) । य इमे द्यावापृथिवी जजान (१३।३।१) इत्येका । यस्मिन्विराट् (८) इति तिस्र (७ तथा ८) । कृष्णं नियानम् (९) इत्येकादश (१०—१९) । निम्रुचस्तिस्र (२१), त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिः (२३) इति तिस्रश्चतुरवसानाः ।

यो वै कुर्वन्तं नाम (१।५।३२) इति पंच (३३–३९) पंचावसानाः ॥१३॥

इति तृतीयः पटलः ।

---

१. बर्लिन संस्करण में दो अवसान हैं । मुम्बई संस्करण में तीन ही हैं । दोनों में प्रथमावसान का भेद है ॥ २. अ, व, दोनों में बहुत भ्रष्टपाठ है ॥ ३ इस पर शङ्करपाण्डुरङ्ग का टिप्पण में पाठभेद देखो ॥ ४. अ, व, दोनों पुस्तकों में पाठक्रम यही है । न जाने १८ वां काण्ड पहले और १७ वां पीछे क्यों आया !

आद्यप्रथम ऋचो नव स्युर्विद्यात् । पञ्च परे तु । पंचमेऽष्टौ । एकादश चोत्तरे पराः स्युः । विंशत्या कुरुते । विंशकावतोन्यौ ।

पंचर्चायो विंशते स्युर्नवोर्ध्वम । ततः परांत्ये[1] । अष्ट कुर्याद्द्वितीये । अष्टोनं[2] तस्मादृचनार्धं तृतीये । द्व्यून तुरीयः । त्रिंशदेकाधिकोंत्यः ।

त्रिंशाधिमित्ताः षडर्चेषु कार्यास्तिस्रो दशाद्यौ च दशपंचर्चा चतुर्दशांत्या अनुवाकशश्च संख्यां विद्यादधिकां निमित्तात् ।

सप्त । नव । एकविंशतिः । अथ कुर्याद्द्वादश । अपराः पंच । षट् । सप्त चापि योध्याः । सप्तदशांत्याः षड्वेवच ।

आद्यात्पर एकादशहीनः षष्टिः । द्विषड्भिराद्य । तिसृभिस्तृतीयः । षष्ठे तु नवैका च । परा च[3] पंचनव ।

अपर एक सूपः (अनुवाक ४) त्र्यशीतिः[4] ॥१४॥

प्रथम, दशम, पंचमाः स षष्टिस्त्रिंशत्का । द्व्यधिकौ, अपश्चिद्, द्वितीयौ । चतसृभिरधिकस्तु सप्तमः स्यात् । एकत्रिंशक सप्तमं वदन्ति । अष्टाविंशो द्वादशः[5] । प्राक् तस्मात्सप्तत्रिंशः । यः परः स चतुःषष्टिः । तृतीयचतुर्थौ त्रयस्त्रिंशत्कौ ।

---

१. अ, ब, ततो परान्ते । व्ह, ततो परांते अथवा पराते ॥ २ अ, ब, अष्टौन ॥ ३. व्ह, पु ॥ ४. व्ह, एकत्रिषष्टिः । व्हिटने ने स्वयं लिखा था, 'यह अस्फुट है' । वस्तुतः लेखक-भ्रम से सूप ही त्रिष (षिः) हुआ है ॥ ५. अ, ब, द्वादश प्रोक्त. । अगला पद 'प्राक्' जिसके आगे 'त' है, 'प्रोक्त' बन गया है । व्हिटने का उपर्युक्त पाठ बहुत ठीक है ।

तत एकर्चानां कीर्त्तयिष्यामि संख्याम्। अष्टावाद्ये। द्वे द्वितीये तु विद्यात्। अष्टौ तिस्रश्चाथ बोध्यास्तृतीये। द्वौ पंचर्चौ सन्निविष्टौ चतुर्थे। पंचैवोर्द्ध्वं विंशतेः पंचमे स्युः। द्विरेकविंशतिः षष्ठिः। त्रिशदेका च सप्तमाः। चतुर्विंशत्येकविंशश्चाम्। परो द्वाविंशक उच्यते।

एकविंशकमिहाद्य मुच्यते। सूक्तश्च गणना प्रवर्त्तते। आद्यसद्वितम्। स सप्तमं षृद्धि विंशतिक सूचोऽष्ट चापराः॥१५॥

विराड्वै तु षट् पर्याया, यो विद्याद्विति षट् स्मृता।

प्रजापतिस्तैवक. स्यात्; त्रयस्तस्योद्गत्तो भवेत्।

टुरीयमाहुरिह पर्चविंशर्कं, कामसूक्तं[1] यदयो तथैव च।

पंचमे, नवदशे च, विंशतेः; द्वे ऋचौ, नवदशापरे च।

प्राणाय, ब्रह्मचारी च; यौ ते, इन्द्रस्य प्रथम, कुत।

ये थाहवः, तृतीये तु, सतपड्विंशकानि तु।

उच्छिष्टेऽध्यायतामन्यो, विंशतिः सप्त चापराः।

इन्द्रो मन्यतु, माहस्रो, दिवश्चतुरुत्तर।

द्वे, तिस्रो, विंशति पच; चतुर्दशाश्चतुर्दश।

चतम्, समानुपूर्व्येण, शेषाः स्युर्विंशतेः[2] पराः।

अष्टादश, आ नय, अग्नि धूमके तिस्रः, यन्मन्युः, इत्यत्र चतुर्दश च।

एकादशैव उपमितानाम्, इति स्युः, तथैव रौद्रेपि परास्तु विंशतेः॥१६॥

सौमस्यधिका षष्टिः, स्वर्गः[3] षष्टिः, नडस्तु पंचोना, सप्तमिल्ला तु वशाः, ब्रह्मगवीः सप्त पर्यायाः। षष्टिः, षड्चत्वारिंशत् षड्विंशति षट्[4] पर्यायाः। एतस्मिंश्च रोहितानामतोऽन्यत्।

---

१. च, ब्लि, काममूतः॥ २. ब्लि, शतेः॥ ३. अ, ब, स्वर्गं॥ ४. अ, ब, षड्॥

प्राचः सौर्यश्चतुःषष्ठिः पंचसप्ततिरुत्तरः।
मात्याद्यः सप्त पर्याया एकादश परो भवेत्।
प्राजापत्यो ह् चतुष्कः पंचपर्याय उत्तरः।
एकपष्ठिश्च पष्ठिश्च सप्ततिस्त्वधिकात्[1] परः।
एकोन नवतिश्चैवं यमेषु विहिता ऋचः।
इत्येतत्समनुक्रान्त मृचस्त्रिशद्विपात्सहिः॥१७॥

इति चतुर्थः पटलः समाप्तः।



१ ख, ग 'त्' नहीं है ॥

आचार्यसंहितया तु पर्यायाणामतः परम् ।
अरसानसख्या वक्ष्यामि यावतीयत्र मिश्रिताः ।
त्रयोदश दशाष्टौ च ततः षोडश षोडश ।
विराड्वायां चतुष्कस्तु षट् पर्यायास्तु निश्चिताः । **यो विद्यायाम्** ।
दश सप्त च पूर्वः स्याद् द्वितीय स्यात्त्रयोदश ।
तृतीयो नवको दृष्ट तस्माद् द्वौ दशकौ परौ ।
षष्ठ तु चतुर्दशकमाहु षड्विंशो **ब्राह्मणोगव** ।
एकविंशाद् भवेत्पूर्व तस्माद् द्वासप्तति पर. ।
तृतीय सप्तको दृष्टो **बृहस्पतिशिरस्यपि** ।
वचनानि च षट् पच षोडशैकादशाष्ट च ।
ब्रह्मगव्यां पंचदश तस्माद् द्वादशक पर ॥१८॥ **रोहित्**
चतुर्थस्यावमानानि वक्ष्यमाणानि तानि शृणु ।
त्रयोदशाष्टौ च तत पर सप्त सप्त दश षट् च बोध्या ।
षष्ठ पंचक उच्यते ।
आरपप्राजापत्योरेव सख्यां वक्ष्यामि तानि शृणु ।
अष्टौ द्व्यूना त्रिंश देकादश परो भवेत् ।
द्व्यूना तु विंशतिस्तुर्य पंचम. षोडश स्मृत' ।
विंशति षट् च षष्ठश्च सप्तम पचक उच्यते ।
एकादशकाश्चयोऽत्र बोध्या द्वावाद्यावय निश्चितौ त्रिकौ तौ ।
षष्ठ ॥ चतुर्दशोऽत्र विद्याद् दश दशमं नवमस्तु सप्तक स्यात् ।
चत्वारि विंशतिश्चैव सप्तमो वचनानि तु ।
अष्टमं नवकं विद्यात् पंचको दशमात्पर ।
प्राजापत्यस्य सर्वस्य[2] परमस्य पुन शृणु ।
त्रयोदशार्थं विजानीयाद् द्वौ षट्कौ सप्तम[3] पर ।
आद्य दर्शकं ह्येकादशकं तस्माच्च परं द्व्यधिकं विहितम् ।
एकादश वै त्रिगुणान्यपर ।
चत्वारि वै वचनानि परश्चत्वारि वै वचनानि पर इति ॥१९॥

इति पंचपटलिका समाप्ता।

---

१. अ, ब, चतुर्दशाच ॥ २. श, पूर्वस्य ॥ ३. श, सप्तकः ॥ ४. अ, ब, दशार्का ॥ ५. अ, ब, समाप्त ॥



ओ३म्

भावानुवाद।

प्रथम पटल।

उक्तानुक्त (कहे हुए के न कहने) के जिस न्याय=नियम को परियस्रव (ऋषि) बोला, तथा पर्यायों और ऋचाओं के (नियम को भी) उसे हम यथाक्रम कहेंगे।

बहुत से अभ्यवेत=संयुक्त=मिले हुए (मन्त्रों के) जहां अनेक सदृश पद (आवें) तो उन में जो आदिष्ट=कहा हुआ (पद) हो, वही उक्तानुक्त कहाता है।

उस (उक्तानुक्त) के उत्पन्न=प्रादुर्भूत होने पर, सेशब्द= आदिष्ट अर्थात् सांकेतिक पद को प्रकरण के अन्त्य में (रखे)। अन्यत्र उस के आरम्भ और समाप्ति का एक पद कहे।

अन्त्य=अन्त वाले (पद) को आरम्भण जाने (पकड़ ले) तथा आद्य को छोड़ दे। कां० २ सू० १६ में 'अग्ने यत् ते' पांच मन्त्रों के आरम्भ में आता है। वहां प्रथम और अन्त का मन्त्र छोड़ के, शेष, २, ३, ४ मन्त्रों में 'ते' पद को पकड़ कर 'अग्ने यत्' छोड़ देना चाहिये अर्थात् मन्त्र २ से 'ते हरेः' इत्यादि ही लिखना चाहिये। वैसे ही कां० ८ सू० १० के पर्याय २ में पूर्व ८। १०, १ में आये 'सोदक्रामत्' पद को न लिख कर 'सान्तरिक्षे' से मन्त्रपाठ लिखना चाहिये। यही यहां निदर्शन=उदाहरण है।

पुनः, जहां से आगे आदि वा अन्त के (पदों की) निवृत्ति होवे, उसी से वहां उन के सन्निहित पद कहने चाहियें। 'ते यज्ञः'

५। ३१। १ सूक्तसप्तमी में तथा 'दिशोघायुः' ५ । १० । १ यहां उदाहरण है ।

विशेष विचार । सूक्तसप्तमी से सम्भवतः कां० ४ का अभिप्राय है । यहीं सात २ ऋचाओं के सूक्त हैं । यहां भी 'से चक्षुः' ४ । १७ । ४ है । दोनों काण्डों के मन्त्रों के कई पद सदृश हैं । यह नियम पांचवें काण्ड में अधिक चरितार्थ होता है, अतः वहीं का प्रमाण मूल के टिप्पण में धरा गया है ॥ १ ॥

'आकार' जहां पर आद्य हो, वहां भी दो पद कहे । 'सा पितॄन' प्रभृति पर्यायों में 'एहीति'=आ+इहि ८ । १० । ४, ५ यहां उदाहरण है ।

अवसान का एक देश जो अवसानता=अन्तता को प्राप्त होवे, वहां भी क्रमपाठ की समाप्ति के लिये दो पद कहे । 'यो ३ जम=यः+अजम' ६ । ५ । २२ 'स्कम्भं तम १० । ७ । ४ यह उदाहरण जाने। अर्थात् इन दो २ पदों को रख के शेष पदों की निवृत्ति करे ।

जो अवसान हो कर पुनः अवयव हो जावे अर्थात् अवसान का भाग बन जावे, उन के अवसानों को अन्त्यों के समान उत्सर्जन करे । 'वीरत् क्षेत्रियनाशनि' २ । ८ । २ यहां उदाहरण है । जो तुल्य अवसान है, वह सारा ही छोड़ दे । 'समिन्द्रः प्रत्यमुञ्चत्' १० । ९ । ७ इस में सारा पहला अवसान और 'यं कुर्वनम्' २।४।३२ यहां तुल्य मध्यावसान सारा २ छोड़ दे ।

पूर्वोक्त विधि में कही हुई सब (ऋचाओं में) यदि जाने तो उन सब के सदृश अवसानों को ऐसे ही छोड़ दे । 'यथा द्यौश्च' २ । १५ । १ 'दोरमक' २ । २४ । १ 'यो वै नैदाघं नाम' ६ । ५ । १, २१ 'यथा वातो वनस्पतीन् १० । ५ । १३ यहां उदाहरण हैं ॥ २ ॥

नाना अवसानों वाला हो के जो पुनः एक (अवसान) में हो जावे, तो उसी से समाप्ति करनी चाहिये और एक में भी उसे पढ़े।

ग्रि० वि० । 'अ', 'व' में चकार और वकार का कोई भेद प्रतीत नहीं होता। 'चापिन्नापि' बन जाता है। अतः इस सम्बन्ध में निश्चय से कुछ कहा नहीं जा सकता।

इस का उदाहरण 'नभिमाम' १८। २। ४४ है। यहां 'यथा परं न मासाते। शते शरत्सु नो पुरा।' यह दो अवसान हैं। अगले मन्त्र में ये पद एक अवसान में आते हैं। सो प्रथम मन्त्र से ही समाप्ति करे। ऐसे ही 'उत्तरस्याम' ४। १४। ८ जानें। यह उदाहरण इतना स्पष्ट नहीं।

पर्यायों में अवसानों का ऋचाओं के समान विधि हो। जैसे 'सविता' १०। ६। १२ 'त्रिपदम' १२। ६। १ यह उदाहरण है। 'अ', 'व' में जो 'येपरेत' पाठ है यह सन्दिग्ध है।

अवसानों के जो गण पृथक् २ सम्बन्धार्थ वाले हैं, उन में अर्थ विधिपूर्वक जानने चाहियें। 'सोऽक्रामत्' ८। १०। २ निदर्शन है। यहां नहीं में समान पद दूर होने से पता नहीं लगता था, अतः ऐसा कहना पड़ा। इस भिन्न प्रकार को व्हिटने ने स्वयं जान कर यह लिखा है —

"Sometimes the case is a little more intricate Thus in viii 10, the initial words सोऽक्रामत् are written only in verses 2 and 29, although they are really wanting in verses 9–17, paryaya II (verses 8–17) being in this respect treated as if all one verse with subdivisions." (p. CXX.)

जो नियम अव्ययों=सयुक्तो में देखा गया है, वही असंयुक्तों में भी दिखाई देता है। वह तुल्य पृथक् पृथक् करे। और उस में एक एक बार ही पढ़े । 'यदेनमाह व्रात्य' १५ । ११ । ४ चौथे मन्त्र में उदाहरण है। यहां सातवें और नवमें मन्त्र में यह पाठ नहीं है, प्रथम में है; अतः यह नियम कहना पड़ा।

इस से आगे कहे हुए नियमानुसार उत्सर्जन करे। अन्त में "सी से कीर्ति करे। 'ते यश' निदर्शन है। इस उदाहरण का पता नहीं लगा ॥ ३ ॥

यदि पुनः ऋचाएं तुल्य=सदृश हों, तो जहां तक उन का विशेषण हो, वहां तक शास्त्र-विधि अनुकूल उन्हें पृथक् करे।

उस से आगे संख्या का प्रयोग करे। 'या दाशाप' १ । २८ । ३ तथा ४ । १७ । ३ यहां उदाहरण है। यह मन्त्र दो स्थलों में आया है। उत्तर स्थल में मन्त्र-प्रतीक देकर "एका" आदि संख्या का प्रयोग करे। 'सं वो मनांसि' ३ । ८ । ५ तथा ६ । ६४ । १ में आया है। वहां भी ऐसे ही करे।

जहां संदेह हो कि एक ही मन्त्र दोबारा आया है या दो साथ २ वाले मन्त्र हैं तो 'पूर्वा' का विशेषण देवे । 'यास्ते धाना' १८ । ३ । ६९ तथा १८ । ४ । २६ में आया है। दोनों स्थलों में इस से पूर्व मन्त्र भी सदृश है।

जहां दो मन्त्र एकत्र आवें और जहां उनके आगे दो मन्त्रों में सदृश प्रतीक हो, तो कौन सा अभिप्रेत है, यह संदेह मिटाने के लिये उत्तर स्थल में आदि में पाठ करे । 'पूर्वापरं' ७ । ८१ । १ तथा १३ । २ । ११ और १४ । १ । २३ में प्रतीक है। इस के आगे 'नवो नवः' ७ । ८१ । २ और १४ । १ । २४ में आया है। यहां १३ । २ । १ की शंका दूरीकरणार्थ यह नियम है।

एक, दो, तीन ऋचायें जहां एकत्र आवें और वैसे ही आगे भी आवें, तो उत्तर स्थलों में 'एका' 'द्वे' 'तिस्रः' यह लिख दें। घर्ग आदि में भी वैसा ही करें। शेष अर्थ किसी हस्तलिखित संहिता को न देखने से पूर्ण स्फुट नहीं।

प्रथम पटल समाप्त हुआ।

द्वितीय पटल।

अथ छन्द=अथर्वसंहिता में भाव=काण्ड, सूक्तादि की स्थिति कहेंगे। तीन प्रकार वाले सूक्तवर्गक, ऋक्पर्यायिक और यजुओं के अवसान को जानने के लिये व्याख्यान करेंगे। पहले चार काण्डों में पांच सूक्तों के अनुवाक हैं, छः अनुवाकों को छोड़ कर। अर्थात् काण्ड १ अ० १, ५, ६। कां० २ अ० ३, ४। कां० ३ अ० ६।

इन छः अनुवाकों को छोड़ कर शेष सब पांच सूक्तों वाले अनुवाक हैं। महत् अर्थात् पंचम काण्ड में एक अर्थात् अनुवाक ४ को छोड़ कर शेष पांच सूक्तों वाले अनुवाक हैं। तृचों अर्थात् तीन ऋचा वाले छठे काण्ड में प्रति अनुवाक दश (१०) सूक्त का है। पर पांच आपवादिक अनुवाक हैं। ३,७, ११, १२ और १३। इन में प्रथम चारों में ११ सूक्त और अन्तिम में १८ सूक्त हैं। एक ऋचा वाले सप्तम काण्ड में एक २ ऋचा वाला सूक्त है।

क्षुद्रों अर्थात् ८ वें से ११ वें काण्ड तक दो दो सूक्त वाले अनुवाक हैं। १२, १३, १४ कांडों में प्रत्येक अनुवाक एक एक सूक्त वाला है।

१७ वें अर्थात् शेष काण्ड में एक सूक्त के एक ही अनुवाक का काण्ड है। यह पूर्वोक्त क्रम पर्यायों को छोड़ के है। 'ब्रात्य

और 'प्राजापत्य' अर्थात् १५ तथा १६ काण्ड का पृथगुत्तर कहा है। सूक्तावस्था यथा काण्ड (आगे कही हुई) है। वहां न प्रत्युपाय और न दुर्वाचय है। यह पाठ अस्पष्ट है। अपवाद अधिक हैं। महत् अर्थात् पञ्चम काण्ड में काण्ड-समवाय आठ ऋचा वाले सूक्तों का है॥ ५॥

आगे प्रतीक धर के यह बताया है कि जो अपवाद पूर्वोक्त प्रसङ्ग में बताए गये थे, उन में किस काण्ड के किस अनुवाक में कितने सूक्त हैं। आगे एकोन=सप्तम काण्ड में प्रत्येक अनुवाक कितने सूक्तों का है यह कहा है। अर्थ बहुत सरल होने से नहीं कहा।

१, २, ३, ४, ५, ६ तथा ७ काण्ड में प्रतिसूक्त क्रमशः ४, ५, ६, ७, ८, ३ तथा १ ऋचा वाले हैं। उन के अपवाद काण्ड सात से आरम्भ होते हैं। वे प्रतीक धर के सब गिना दिये गये हैं। सो सारे मूल में देखने चाहियें। 'अ', 'ब' दोनों मूल पुस्तकों में काण्ड २ का अङ्क इस पटल में दो बार आया है। हम ने इसे वैसा ही दे दिया था। पीछे विचार हुआ कि यह लेखक-प्रमाद से ही हुआ है। सो पाठकों को इसे शुद्ध कर लेना चाहिये। इस प्रकार पांच पटलों में सारे बीस काण्ड हो जायेंगे। इस संशोधित गणनानुसार १। १० वाले सातवें काण्ड के अपवादों में 'आ सुभ्रुतः' (७६) छः ऋचा वाला सूक्त भूल से रह गया है। इस बात का ध्यान शङ्करपाण्डुरङ्ग ने भी अपने आलोचनात्मक विज्ञापन पृ० १८ पर दिलाया है।

मुम्बई संस्करण में सूक्त ७८ को चार वा दो ऋचा वाले दो सूक्तों में विभक्त किया है, परन्तु पटलिका में इस के लिये कोई प्रमाण नहीं।

द्वितीय पटल समाप्त हुआ।

तृतीय पटल।

खण्ड दश का अन्तिम श्लोक अशुद्ध प्रतीत होता है। किसी लिखित ग्रन्थ के आधार के बिना इस का यथार्थ पाठ नहीं ढूंढा जा सकता।

खण्ड ११ से एक अवसान, तीन अवसान, चार अवसान और पांच अवसानों वाली ऋचाओं की प्रतीकें धरी हुई हैं। कई मन्त्र बर्लिन संस्करण में दो अवसानों वाले हैं। मुम्बई संस्करण के सम्पादक ने उन्हें प्रायः पञ्चपटलिकानुसार कर दिया है।

तृतीय पटल समाप्त हुआ।

चतुर्थ पटल।

(१) आद्य (काण्ड) के प्रथम (अनुवाक) में ऋचाएं ६ (अधिक हैं २० से, ऐसा) जाने। ५+२० अगले में। पांचवें में ८+२०। ११+२० अगले में हैं। बीस से (आदर्श) करते हैं। बीस इन से दूसरों में।

प्रथम काण्ड में छः अनुवाक हैं। उन सब की ऋचा—संख्या क्रमशः यह बनी। २६+२५+२०+२०+२८+३१=१५३। प्रथम काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श चार है।

(२) पांच ऋचा वालों में से आद्य अनुवाक (में) हैं बीस से नौ ऊपर अर्थात् २९। ऐसे ही अन्त्य से पूर्व में। ८+२० करे दूसरे में। आठ कम, उस सौ के अर्ध से तीसरे में (अर्थात् ५०—८=४२)। दो कम पचास से चतुर्थ। तीस से एक अधिक अन्त का।

दूसरे काण्ड में छः अनुवाक हैं। उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी। २९+२८+४२+४८+२९+३१=२०७। दूसरे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श पांच है।

(३) तीस का निमित्त (आदर्श) छः ऋचा वाले (सूक्तों में) करना चाहिये। तीन, दश, आठ, दश और पांच और चौदह अन्त वाले में। (इस प्रकार) अनुवाक के पीछे अनुवाक में यथानाम संख्या जाने, अधिक निमित्त से।

तीसरे काण्ड में छः अनुवाक हैं। उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी। ३३+४०+३८+४०+३५+४४=२३०। तीसरे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श छः है।

(४) सात, नौ, इक्कीस, तय करे बारह। आगे पांच, छः और सात भी जानने चाहियें। सतारह वाला अन्त का। छः ऋचा वाले के समान।

चौथे काण्ड में आठ अनुवाक हैं। उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी। ३७+३९+५१+४२+३५+२८+३७+४७=३२४। चौथे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श सात है।

(५) प्रथम से परला ग्यारह कम साठ। दो छः अर्थात् बारह कम साठ वाला प्रथम। तीन कम साठ वाला तीसरा। छठे में नौ और एक और साठ। परले में साठ और नौ। उस से भी परले 'एक शृगोसि' वाले में तीन और अस्सी।

पांचवें काण्ड में छः अनुवाक हैं। उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी। ४८+४९+५७+८३+६६+७०=३७३। पांचवें काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श आठ है।

(६) प्रथम, दशम और पञ्चम अनुवाकों में, यह छठा तीस वाला। दो अधिक तीस से 'अपचिद्' अर्थात् नवम अनुवाक में; (और इतनी ही) दूसरे अनुवाक में। चार अधिक तीस से सातवां है। इकत्तीस वाले आठवें को कहते हैं। अट्ठतीस वाला

बारहवां। उस से पहला सैंतीस वाला। जो अगला वह चौंसठ वाला। तीसरा और चौथा तेंतीस वाले।

छठे काण्ड में तेरह अनुवाक हैं। उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी। ३०+३२+३३+३३+३०+३०+३४+३१+३२+३० +३७+३८+६४=४५४। छठे काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श तीन है। इन्हीं सूक्तों को तृच कहते हैं।

व्हिटने ने छठे अनुवाक के सम्बन्ध में जो पाठ सर्वानुक्रमणी से उद्धृत किया है, वह उसके टिप्पण सहित यह है—'षष्ठो त्रिंशत्कौ (षष्ठो, त्रिंशकौ?)

(७) इस से आगे एक ऋचा वाले सूक्तों की कीर्तन करूंगा संख्या। आठ (बीस से अधिक) प्रथम (अनुवाक) में। दो दूसरे में जाने। आठ और तीन जानने चाहियें तीसरे में। दो बार पांच अर्थात् दश ऋचाएं सन्निविष्ट हैं चौथे में। पांच अधिक बीस से पांचवें में हैं। दो बार इक्कीस छठे में। इकत्तीस सातवें में। चौबीस, इक्कीस से। अगला बत्तीस वाला कहा जाता है।

सातवें काण्ड में दश अनुवाक हैं। उन सब की ऋचा-संख्या क्रमशः यह बनी। २८+२२+३१+३०+२५+४२+३१+२४+२१+३२ =२८६। सातवें काण्ड के सूक्तों में ऋचा-आदर्श एक है।

प्रथम सात काण्डों में कुल ऋचा-संख्या-१५३+२०७+२३०+ ३२४+३७६+४५४+२८६=२०३० अर्थात् दो सहस्र तीस मन्त्र।

इस काण्ड की समाप्ति यहां होनी चाहिये क्योंकि आगे नई गणना आरम्भ होती है।

इक्कीस ऋचा वाला (आठवें काण्ड का) प्रथम (सूक्त) कहा जाता है। (आगे) गणना सूक्त-क्रम से प्रवृत्त होती है। प्राच के साथ। वह मानवां सूक्त अठाईस ऋचा वाला है ॥ १५ ॥

(अष्टम काण्ड के नवम सूक्त से आगे) 'विराड् वा' छः पर्याय हैं। (नवम काण्ड के पांचवें सूक्त से आगे) 'यो विद्यात्' छः पर्याय हैं। (इन से अगला ही अर्थात् तृतीय अनुवाक के आगे) 'प्रजापतिः' वाला एक पर्याय है। (इन से परे एकादश काण्ड के दूसरे सूक्त से आगे) 'तस्यौदनस्य' वाले तीन पर्याय हैं।

(कां० ८ का) चतुर्थ सूक्त यहां पचीस ऋचा वाला कहा जाता है। (इतनी ऋचा वाला ही) कामसूक्त (कां० ६ सू० २) तथा 'अयं मे वरणो' (१० । ३) है।

क, ख और ग्र में "वरणौ" पाठ है। व्हिटने ने 'वरणो' पाठ रखने की सम्मति दी है।

(काण्ड आठ के) पांचवें, और उन्नीसवें (अर्थात् काण्ड नवम के नवम सूक्त) में बाईस ऋचाएं हैं। और उन्नीसवें से पहले (अर्थात् कां० ६ सू० ८) में भी (बाईस ही)।

'प्राणाय' ११ । ४ और 'ब्रह्मचारी' ११ । ५, 'यौ ते' ८ । ६, 'इन्द्रस्य प्रथमः' १० । ४, 'कुतः' ८ । ६, 'ये बाहवः' ११ । ६ तथा ८ । ३ ये सात छब्बीस ऋचा वाले हैं।

'उच्छिष्टे' ११।७, 'अयायनम' १०।६ और अन्त्य का ११।१० सताईस ऋचा वाले हैं। 'इन्द्रो मन्थतु' ८।८, 'साहस्रः' ७।५, 'द्विषः' ७।१ चार अधिक (बीस से अर्थात् चौबीस) ऋचा वाले हैं।

दो (अधिक तीस से) १० । १, तीन (+तीस) १०।२, बीस (+तीस) १०।५, पांच (+तीस) १०।६, चौदह(+तीस) १०।७, चौदह (+तीस) १०।८, चार (+तीस) १०।१०, सात (+तीस) आनुपूर्वी से, शेष हैं तीस से परे ११।१।

अठारह (+बीस) 'प्र नय' ७।५, 'अग्नि भूमः' ११।६,

तीन (+बीस) और 'यन्मन्युः,' ११।८ यहां चौदह (+बीस) वाला है। ग्यारह (+बीस) उपमिताम' ९।३ है। वैसे ही इकत्तीस वाला रुद्र सूक्त ११।२, यहां संख्या बीस को आदर्श मान के उस से ऊपर कही है ॥ १६ ॥

पहले विभाग में गणना अनुवाक-क्रम से थी। इस विभाग में सूक्त-क्रम से होगई है। यहां दूसरे सूक्त के सम्बन्ध में 'आद्य सहितम्' लिखा है। इसका अर्थ इतना स्पष्ट नहीं। इस गणना में पर्याय तो गिन लिये गये हैं, परन्तु उन के अवसानों की संख्या अन्तिम पटल में दी गई है, अतः वह वहीं गिनी जायगी।

पूर्वोक्त ८-११ काण्ड तक की ऋचा-गणना क्रमशः यह बनी।

सू०	कां० ८	कां० ९	कां० १०	कां० ११
१	२१	२४	३२	३७
२	२८	२५	३३	३१
३	२६	३१	२५	पर्याय
४	२५	२४	२६	२६
५	२२	३८	५०	२६
६	२६	पर्याय	३५	२३
७	२८	"	४४	२७
८	२४	२२	४४	३४
९	२६	२२[1]	२७	२६
१०	पर्याय	२८	३४	२७
	२२६	२१४	३५०	२५७

१. यह गणना मूल में नहीं मिलती। प्रतीत होता है भूल से रह गई है।

भौमः=भूमि देवता वाला १।१ तिरसठ वाला। स्वर्गः १।३ साठ वाला। नष्टः १।४ पांच कम अर्थात् पचपन वाला। वश (देवतात्मक) सात कम अर्थात् तरेपन वाला। ब्रह्मगवी देवता वाले सात पर्याय (आगे)।

साठ १।१, छयालीस १।२, छब्बीस १।३, आगे छः पर्याय। यह तेरहवां काण्ड रोहित देवता वाला है।

(कां० १४ का) प्रथम (अनुवाक=सूक्त) सूर्य देवता वाला चौंसठ वाला। पचहत्तर वाला अगला।

(कां० १५) व्रात्य काण्ड कहाता है। उस के आरम्भ में सात पर्याय हैं, और उनसे आगे ग्यारह। इस में दो अनुवाक हैं। उन्हीं के अन्तर्गत ये दो पर्याय-समूह हैं।

प्राजापत्य (कां०१६) में भी दो अनुवाक हैं। उन में चार और पांच पर्याय क्रमशः हैं।

इकासठ, साठ, तिहत्तर, नवासी, क्रमशः ऋचा-संख्या यम अर्थात् काण्ड अठारह के चार अनुवाकों में है।

यहां तक ठीक अनुक्रम कहा गया है। तीस ऋचाएं 'विपासहिम्' प्रतीक वाले सत्तारहवें काण्ड में हैं। इसमें एक ही अनुवाक हैं।

सू०	कां० १२	कां० १३	कां० १४	कां०१८	कां० १७
१	६३	६०	६४	६१	३०
२	५५	४६	७५	६०	
३	६०	२६		७३	
४	५३	पर्याय		८९	
५	पर्याय				
	२३१	१३२	१३९	२८३	३०

चतुर्थ पटल समाप्त हुआ।

पञ्चम पटल ।

इस से आगे आचार्यसंहिता में जो पर्यायों के अवसानों की काण्डों में मिश्रित संख्या है, उसे कहूंगा ।

तेरह, दश, आठ, तत्पश्चात् सोलह, सोलह, 'विराड् वा' वाले में, तब चार, यहां छ पर्याय निश्चित हैं ।

अष्टम काण्ड में अवसानों की कुल संख्या—१३+१०+८+१६+१६+४=६७ ।

नवम काण्ड में 'यो विद्यात्' के पर्याय में अवसान-संख्या-पहला सत्तरह वाला है । दूसरा है तेरह वाला । तीसरा नौ वाला देखा गया । उस के आगे दो दश २ वाले हैं । छठा चौदह वाला है । अगला ब्रह्म की गौ वाला छब्बीस वाला है ।

नवम काण्ड में अवसानों की कुल संख्या—

१७+१३+९+१०+१०+१४=७३ । ७३+२६=९९ ।

(काण्ड दश में कोई पर्याय नहीं । काण्ड ग्यारह में सूक्त दो से आगे एक पर्याय-समूह है । उस में) इकत्तीस वाला पहला है । उस से आगे बहत्तर वाला है । तीसरा सात वाला 'बृहस्पति शिरः' वाले पर्यायों में है ।

एकादश काण्ड के अवसानों की कुल संख्या—३१+७२+७=११० ।

दूसरे पर्याय पर व्हिट्ने का नोट (पृ० ६२८) पर देखो । उस के अनुसार बर्लिन संस्करण में यह दूसरा पर्याय केवल अठारह गणों या दण्डकों में ही विभक्त है ।

पटलिका के दूसरे विभाग की कुल संख्या —

ऋचा संख्या—२२९+२१४+३५०+२५७=१०४७ ।

अवसान संख्या—६७+९९+११०=२७६।

दोनों की मिली हुई संख्या—१०४७+२७६=१३२३।

ब्रह्मगवी देवतात्मक १२।५ के पर्यायों में वचन हैं,—छः, पांच सोलह, ग्यारह और आठ। उस से आगे पन्द्रह और फिर बारह।

बारहवें काण्ड के कुल वचनों की संख्या—६+५+१६+११+८+१५+१२=७३।

रोहित अर्थात् काण्ड तेरह के चौथे अनुवाक के जो कहे जाने वाले अवसान हैं, उन्हें सुनों। तेरह और आठ। उन से आगे सात, सतारह, छः। छठा पर्याय पांच वाला कहा जाता है।

तेरहवें काण्ड के पर्यायों के अवसानों की कुल संख्या—१३+८+७+१७+६+५=५६।

चौदहवें काण्ड में कोई पर्याय नहीं।

अब 'व्रात्य' और 'प्राजापत्य' अर्थात् काण्ड १५, १६ के अवसानों की संख्या कहूंगा, उन (अवसानों) को सुनों। आठ, आगे दो कम तीस, अगला ग्यारह वाला है। चौथा दो कम बीस वाला, पंचम सोलह वाला है। छठा छब्बीस वाला, सातवां पांच वाला कहाता है। दूसरे अनुवाक के तीन पर्याय (३,४,५) ग्यारह वचनों वाले जानों। निश्चय ही दो आदि के तीन तीन वचनों वाले हैं। छठे को चौदह वाला जानें। दशम दश वाला, नवम सात वाला है। सातवें में चौबीस वचन हैं। आठवां नौ वाला जानें। दशम से अगला ग्यारहवां पांच वाला है।

पन्द्रहवें काण्ड के पर्यायों के अवसानों की संख्या—

प्रथमानुवाक में—८+२८+११+१८+१६+२६+५=११२।

द्वितीयानुवाक में—३+३+११+११+११+१४+२४+६+७+१०+५=१०८। कुल संख्या—११२+१०८=२२०।

प्राजापत्य काण्ड के प्रथमानुवाक * और फिर द्वितीयानुवाक के सम्बन्ध में सुनो। पहले तेरह वाला जानें, दूसरा और तीसरा छः छः वाले, सात वाला अगला चौथा। (यहां प्रथमानुवाक समाप्त हुआ)। पहला दश वाला, अगला ग्यारह वाला, उस से अगला तेरह वाला। अगला तीन गुणा ग्यारह अर्थात् तेंतीस वाला। अगले में चार वचन हैं। ये चार पाठ ग्रन्थ समाप्त्यर्थ हैं ॥ १९ ॥

सोलहवें काण्ड के पर्यायों के अवसानों की संख्या—

प्रथमानुवाक में—१३+६+६+७=३२।

द्वितीयानुवाक में—१०+११+१३+३३+४=७१।

कुल संख्या—३२+७१=१०३।

पटलिका के तीसरे विभाग की ऋचा संख्या—२३१+१३२+१३९+२८३+३७=८२२।

अवसान-संख्या—७२+५६+२२०+१०३=४५२।

दोनों की मिली हुई संख्या—८२२+४५२=१२७४।

पञ्च पटलिकानुसार अठारह काण्डों के मन्त्रों और वचनों की कुल संख्या—२०३०+१३२३+१२७४=४६२७।

पञ्चम पटल समाप्त हुआ।

पञ्चपटलिका का भावानुवाद समाप्त हुआ।



* मूल में सर्वस्य पाठ के स्थान में पूर्वस्य ही युक्त है।

पटलिकान्तर्गत मन्त्र-प्रतीकानुक्रमणी ।

अङ्कों से पटल अभिप्रेत हैं ।

अचितिम्	१२
अक्षीभ्यां ते	७
अग्नये कव्यवाहनाय	१२
अग्नाविष्णू महि	१०
अग्निष्वात्ताः	१२
अग्निस्तक्मानम्	८
अग्ने अक्रव्यात्	१२
अग्ने इन्द्रश्च	१०
अग्नेर्भागस्थ	१३
अङ्गादङ्गात्	१३
अजो ह्यग्नेः	७
अति धन्वानि	१०
अति मात्रम्	८
अत्रैनानिन्द्र	१३
अदितिर्द्यौः	१०
अदो यदवधावति	७
अनड्वान् दाधार	७
अनाधृष्यः	१०
अनु सूर्यम्	६
अन्तरा द्याम्	१३
अन्तरिक्षं धेनुः	१३
अन्तर्धिः	१२
अन्तरिक्षेण	१३
अन्यद्य नः	१०
अपचिताम्	१०
अपचितः प्रपतत	९
अप नः शोशुचत्	७
अपि वृश्च	१०
अपेहरिः	१३
अपो दिव्याः	१०
अप्सु ते राजन्	१०
अभित्वा	१३
अभित्यम्	१०
अभीवर्तेन	६.७
अभ्यर्चत	१०
अमुत्र भूयात्	१०
अयं ते योनिः	७
अयं लोकः	१३
अयं सहस्रम्	१०
अयं सहस्रमा	१२
अघमर्षन	१३
अर्बुदिर्नाम	१३
अवैरहत्याय	१३
अश्म वर्म मे	७

अहो रात्रैः	१३
अहं रुद्रेभिः	७
आ त्वा अग्ने	१३
आ त्वा गन्	७
आ नो अग्ने	७
आ नो भर	७
आ पद्यति	७
आयय:	६
आ मा पुष्टे च	१३
आ यमेगन्	७
आरे अभूत	१३
आयतसे	८
इतो जय	१३
इदं खनामि	१०
इदमुग्राय	१०
इदं यत् कृष्णः	१०
इदं सु मे	१३
इन्द्र जुषस्व	७
इन्द्रमहम्	७
इन्द्रो रूपेण	१३
इन्द्रायाहि	१३
इमं मे अग्ने	६
इमामग्ने	१३
इमा यास्तिस्रः	७
इमे मयूखाः	१२
इयं वीरुत्	८
इहैव ध्रुवाम्	७
ईशानां त्वा	७
ईडां वो मरुतः	१३
ईडां वो वैश्वराज्यम्	१३
उच्चैर्घोषः	८
उत्तरं द्विपतः	१३
उत्तरस्याम्	३
उत्तिष्ठताय	१०
उतो अस्य बन्धुकृत्	७
उदगादयम्	१३
उदपूरसि	१२
उदस्य श्यावः	१०
उदायुरद्	१३
उद्धर्पन्ताम्	१३
उद्धर्षिणाम्	१३
उद्यन्नादित्यः	७
ऊर्जं बिभ्रत	१०
ऊर्ध्वा अस्य	८
ऋचं साम	१०
ऋधङ् मन्त्रः	७
एका चा मे	८
एतं भागम्	६
एतं सधस्थाः	६

एष यज्ञानम्	११	ते यदा	३
एहि जीयम्	७	ते हरः	१
ओजोऽस्योजो	७	त्वमग्ने क्रतुभिः	१४
यो ते मे	८	त्वमिन्द्रस्त्वं	१३
क इदम्	१३	त्वं न इन्द्रोतिभिः	१३
कथं महे	८	त्वं नो मेध	६
कश्यपस्याम्	१३	त्वया पूर्वम्	७
कुहूं देवीम्	१०	त्वं रयमं	१३
कृष्णां नियानम्	२४	त्वं वीरुधाम्	६
क्षिप्रम्	३	दर्शोऽसि मगप	८
क्षेत्रियात्	७	दिवे स्वाहा	७,१२
खहूरेऽधि	१३	दिशो यायुः	१
चक्षुःश्रोत्रम्	१०	दिशो धेनवः	१३
जनाद्विश्वजनीनात्	१०	दीर्घायुत्वाय	९
तदिदास	७	दूष्या दूषि	६
तमिन्द्रः	२,१३	दृंह प्रत्नान्	१
ता न प्रजा	१२	देवो देवाय	२
तांस्त्वयौजाः	७	देवो देवेषु	१
तास्ते रक्षन्तु	१२	द्यावापृथिवी	
तिरश्चिराजेः	१०	द्यौर्धेनुः	१
ते चक्रुः	१	धर्तासि	१
ते त्वा रक्षन्तु	१२	धाता दधातु	१
तेनेमां महिमा	१३	धीती वा ये	१
ते वदन्	८	नदीं यं तु	१
		नमस्ते घोषिणीभ्यः	१

नमो रुद्राय	१०	प्रपतेतः	१०
नव प्राणान्	८	प्रपथे पथाम्	१०
नवोनवः	४	प्राग्नये वाचम्	९
निम्रुचः	१४	प्राचीदिक्	१३
निः सालाम्	७	प्राच्यादिशः	१२
नेच्छत्रुः	७	प्राच्यै त्वा दिशे	१३
नैतां ते	८	प्राणापानौ	१२
न्यस्तिका	९,१३	प्रातरग्निम्	७
पदज्ञाःस्थ	१३	प्रान्यात्	१०
पयस्वतीः	७	बृहता मनः	१३
पर्वताद्दिवो	८	बृहन्मेधाम्	७
पार्थिवस्य	९	ब्रह्म जज्ञानम्	७
पुमान्पुंसः	७	ब्रह्मास्य शीर्षम्	७
पुरस्ताद्युक्तः	८	ब्राह्मणो जज्ञे	६
पूर्णा पश्चात्	१०	भूम्यां देवेभ्यः	१३
पूर्णापरम्	४,१०	भ्रातृव्य	९
पृथिवी दण्डः	१२	ममाग्ने वर्चः	७
पृथिवी धेनुः	१३	महत्सधस्थम्	१३
पृथिव्यामग्नये	७	मा त्वा क्रव्यात्	१३
पृथिव्यै श्रोत्राय	१२	मा परि देहि	९
प्रजावतीः	१०	मुञ्चामि त्वा	७
प्रतीचीनफलः	१२	मुमुक्तमस्मान्	१२
प्रथमा ह	७	यच्छयानः	१३
प्रनभस्व	१०	यजूंषि यज्ञे	८,१२

यज्ञेन यज्ञम	१०	यस्माद्वाता.	१३
यज्ञ एति	१३	यस्मिन्विराट्	१४
यत्किंचासौ	१०	यस्यव्रतम्	१०
यत्तेदेवा	१०	यस्यास्त आसनि	६
यत्तेदेवा	६	यस्यां गायन्ति	१२
यत्तेवर्च	१३	यस्यां सदो	१२
यथाद्यौश्च	२,७	यस्योरुषु	१२
यथा मांसम्	१३	य आत्मदा	७
यथा वातः	२	य इमां देवः	६
यथा वृक्षस्	१०	य इमे द्यावापृथिवी	१४
यथा सोमः	१३	यावसर्पं	१३
यथा सूर्यः	१०	यामश्विनौ	१३
यथेयं पृथिवी	६	य एनं परिषदंति	६
यदग्ने तपसा	१०	या ये परि	१३
यदद् संप्रयतीः	७	यार्णवेऽधि	१३
यद्यत्वा	१०	या शशाप	४
यदाशसा	१०	यास्ते धाना	४
यदेनमाह व्रात्य	३	यां ते चक्रु	८
यद्देयाम	६	यां त्वा गन्धर्वो	७
यद्येक वृषोसि	६,८,१२	यां द्विपद्	१३
यद्राजानः	७	या सुपर्णा.	१३
यद्वीध्रे	११	ये अग्नयो	७
यं देवाः स्मरम	६	ये च धीरा	१२
ययोरोजसा	१०	ये न पितरः	१२
यस्ते गन्ध	१३	ये त्रिषप्ता	६

ये पुरस्तात्	७	विश्व ते स्वम	१३
ये पुरुषे	१३	विदूमाशरस्य	७
ये याहवः	१३	वि य अँशात	१३
ये शालाः	१३	विद्य जित्	९
येषां पद्वात्	१३	विपाशा पाशात्	९
ये ३ स्यांस्थ	६	विपासहिम	१३
यो अङ्गयः	१३	विष्णो क्रमोऽसि	१३
योऽज्ञम्	२	विष्णोर्नु कम्	१०
योऽन्येद्युः	१२	विहृदयम्	८
यो गिरिषु	७	वीरुतक्षेत्रिय	२
यो नस्तायत	१०	वीहिस्याम्	१२
यो मारयति	१३	वैकङ्कतेन	७
यो वा आप	१४	वैकुर्वतम्	२
यो वै नैदाघम	२,१४	वैश्वानर	८
यो वै कुर्वतम	१४	शकधूमम्	९
य प्राणेन	१३	शेरभक	२, ७,१२
रथजिताम्	९	शं ते अग्नि	१३
रात्रिमाता	७	शं ते नीहारः	१३
वनस्पतीन्वानस्पत्यान्	१३	शिवे ते स्ताम्	१३
वनस्पते	८	शुम्भनी	१०
वपट्ते	७	शुंभताम्	१२
वायुरमित्राणाम्	१३	श्वन्वतीः	१३
वि ते मुञ्चामि	१०	सखासौ	१२
वि देवा	७	स पचामि	१२

सभा च मा	१०	सांतपनाः	१०
संज्ञानं नः	१०	सान्तरिक्षे	१
संदानं व	६	सा पितॄन्	२
सं वो मनांसि	४	साहस्रः	१२
समं ज्योतिः	७	सिनीवाली	१०
संशितं मे	७	सिंहे व्याघ्रे	६
समिद्धो अग्निः	१०	सीरा युंजन्ति	७
समिद्धो अद्य	८	सुपर्णास्त्वा	८
समिमाम्	३	सुषूदत मृडत	१२
समुत्पतन्तु	७	सूर्यस्य रश्मीन्	१३
सम्यञ्चं तन्तुम्	१३	सोऽक्रामत्	८
सरस्वती व्रतेषु	१०	सोमो राजा	१२
सर्वदा	३	स्कंभं तम्	२
स्वांनग्ने	१२	स्तुवानम्	७
सविता प्रसवानाम्	८	स्वस्तिदा	१३
सहृदयम्	७	हरिणस्य	७



शुद्धि पत्रम् ।

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०		पं०
विद्वनों	विद्वानों	५	भूमिका	६
स्मृतं	स्मृतम्	३		६
अयवसानाः	व्यवसाना.	१२		८
प्राजापतयोः	प्राजापत्ययोः	१६		१५

शेष अशुद्धियां अनुवाद में ठीक कर दी गई हैं ।

